४७-३



वर्ष ४४] * * * [अङ्क २

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

संस्करण १,५१,०००

विषय-सूची

कल्याण, सौर चैत्र २०२६, मार्च १९७०

चित्र-सूची

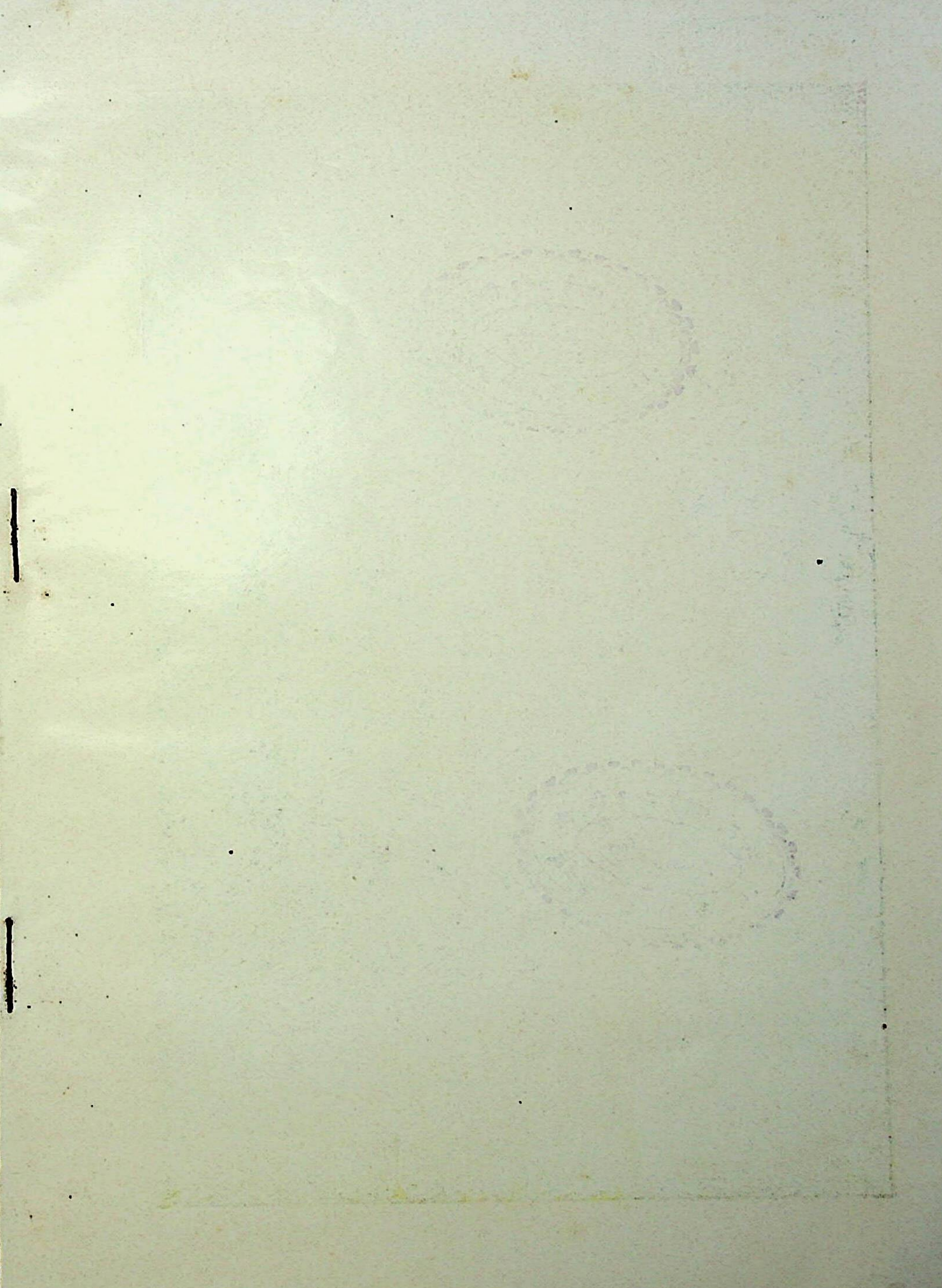
वार्षिक मूल्य भारतमें ९.०० विदेशमें १३.२५ (१५ शिलिंग)

जय विराट जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

साधारण प्रति भारतमें ५० पै० विदेशमें ८० पै० (१० पेंस)

सम्पादक—हनुमानप्रसाद पोद्दार, चिम्मनलाल गोस्वामी, एम्० ए०, शास्त्री

मुद्रक-प्रकाशक—मोतीलाल जालान, गीताप्रेस, गोरखपुर





श्यामसुन्दर—किसी प्रतीक्षामें

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥



देवादिदेव भगवन् कामपाल नमोऽस्तु ते । नमोऽनन्ताय शेषाय साक्षाद् रामाय ते नमः ॥
नमः श्रीकृष्णचन्द्राय परिपूर्णतमाय च । असंख्याण्डाधिपतये गोलोकपतये नमः ॥

वर्ष ४४ } गोरखपुर, सौर चैत्र २०२६, मार्च १९७० { संख्या ३
पूर्ण संख्या ५२०

श्यामसुन्दर-प्रतीक्षामें

मधुर मुरलि कर, मोर-मुकुट सिर, नूतन जलद-नील घनश्याम ।
ऋषि-मुनि-मन-आकर्षक दृगयुग, कुटिल भ्रुकुटि, पटपीत ललाम ॥
कोटि-कोटि मन्मथ मन्मथ माधुर्य रूप-गुण-निधि अभिराम ।
स्मरण सतत करते रहते शुचि पावन प्रेमीजन अविराम ॥
नियत समय-संकेत-स्थलपर पहुँच प्रतीक्षा करते श्याम ।
शुचितम दिव्य रास-रस-स्वामिनि स्वयं पधार रहीं छविधाम ॥

याद रक्खो—जैसे एक ही शरीरके भिन्न-भिन्न अङ्ग, उनके भिन्न-भिन्न नाम और काम होनेपर भी एक ही चेतन आत्मा सबमें सब समय सर्वथा व्याप्त है, सब उसीसे अनुप्राणित, जीवित और क्रियाशील हैं, सबके भिन्न नाम-रूप-क्रिया होनेपर भी सब अङ्ग-अवयव परस्पर एक दूसरेकी सहज सेवा-सहायतामें तथा उनके सुख-हित-सम्पादनमें संलग्न हैं, वैसे ही एक ही विराट् आत्मा—ब्रह्म या परमात्मा इन विभिन्न नाम, रूप तथा क्रियावाले असंख्य ब्रह्माण्डोंमें व्याप्त है और शरीरके अङ्गोंकी भाँति ही विभिन्न ब्रह्माण्डोंके मानवमात्रका, जिसको भगवान्ने विवेक-ज्ञान दे रक्खा है—यह कर्तव्य है कि वह भिन्न-भिन्न कर्म करता हुआ भी सर्वात्मभावसे सबके सुख-हित-सम्पादनमें, सबकी सहज सेवा-सहायतामें लगा रहे। यही तत्त्वज्ञानका साधन है और भारतके ऋषियोंकी यही अनुभूति है।

याद रक्खो—अज्ञानवश जीवमें 'अहं' ('मैं' पन) की उत्पत्ति होती है। वास्तवमें यह 'अहं' उसे मिला है—संसारके व्यवहार-निर्वाहके लिये, वैसे ही जैसे नाटकके प्रत्येक पात्रको 'अहं' (उसका नाम, रूप तथा काम) नाटककी सफलताके लिये उसे दिया जाता है। परंतु वह उस 'अहं' को सत्य मानकर उसमें ममता-आसक्ति तथा उससे परमें उपेक्षा, द्वेष आदि कर बैठता है और उसी क्षुद्र 'अहं'के कल्पित मङ्गलके लिये विविध कामनाओंके वश होकर विवेकभ्रष्ट हो जाता है एवं अपने मङ्गलके नामपर नित्य अभाव, नित्य अशान्ति, नित्य दुःखका अनुभव करता हुआ नित्य नये-नये पापोंका आचरण करके अपना भविष्य बिगाड़ता रहता है। यह 'अहं' जितना-जितना छोटे दायरेमें आता है, उतना-उतना ही अधिक दूषित होता है—जैसे छोटेसे गड्ढेमें इकट्ठा हुआ शुद्ध जल दूषित हो जाता है।

याद रक्खो—भारतका अनुभूत सत्य तत्त्वज्ञान बतलाता है कि केवल मनुष्य ही नहीं, जड-चेतन जीवमात्रके रूपमें एक परमात्मा ही अभिव्यक्त हो रहे हैं। इसी तत्त्वको सदा सामने रखकर ही व्यवहार करना चाहिये; पर सीमित गंदा 'अहं' ऐसा करने नहीं देता। जब पाकिस्तान तथा हिंदुस्थान एक देश था, तब हिंदू-मुसल्मान-पारसी—सभी देशकी स्वतन्त्रताके लिये एक सूत्रमें बँधकर स्वतन्त्रताकी साधना करते थे। अलग-अलग धर्म होते हुए भी सभी 'भारतीय' थे। पाकिस्तान बना कि दो परस्परविरोधी राष्ट्र बन गये। सिख और हिंदूमें तो दोकी कभी कल्पना ही नहीं थी। क्षुद्र 'अहं'ने आज उन्हें दो बनाकर आपसमें वैमनस्य उत्पन्न करना आरम्भ कर दिया। सारा भारत एक देश था, आज क्षुद्र अहंके कारण भाषा तथा भूमिकी सीमाके नामपर प्रत्येक प्रान्त एक दूसरेको पृथक् मानकर अपने सीमित स्वार्थके लिये आपसमें लड़ने लगे। पंजाब-हरियाणा दोनों ही पंजाब थे। कोई लड़ाई नहीं। अब क्षुद्र अहंके कारण हुई दुर्दशा देखिये। परस्पर रक्तपात, अनशन, शरीरदाह, आगजनी, विध्वंस हो रहा है। यह सारी हानि अपनी ही हो रही है, पर क्षुद्र अहं इस तरफ दृष्टि ही नहीं जाने देता।

याद रक्खो—कुछ समय पहले भारतमें बहुत थोड़े राजनीतिक दल थे। जो थे, उनमें कम-से-कम अपने दलमें तो मतैक्य तथा प्रेम था, पर आज कांग्रेसी, समाजवादी, कम्यूनिस्ट तथा अन्यान्य दलोंमें प्रत्येक दलमें परस्परविरोधी अनेक भेद हो गये हैं और देखिये क्षुद्र 'अहं' का चमत्कार कि वे एक उद्देश्यवाले होकर भी परस्परमें बुरी तरहसे नीचे स्तरका वाग्युद्ध और शरीरयुद्ध करते हैं एवं एक दूसरेको गिरानेमें लगे हुए हैं। बात-बातपर दल और मत बदलनेमें भी नहीं सकुचाते। धर्म, देश और

जातिके लिये सर्वत्यागकी शिक्षा प्राप्त किये हुए, अपने व्यक्तिगत जीवनसे लोगोंको त्याग, सदाचार तथा शिष्टाचारकी शिक्षा देनेवाले लोकनायकोंकी जब क्षुद्र अहंके कारण इस प्रकार दुर्गति हो रही है, तब उनको आदर्श मानकर उनका अनुकरण करनेवाले जनसमूहकी क्या गति होगी ? यह बहुत ही विचारणीय प्रश्न है।

याद रक्खो—इस समय क्षुद्र सीमित 'अहं' का तूफान आया हुआ है। प्राय: सभी उसमें फँसे हैं। अतएव सबका सुधार तो अभी कठिन है। अभी तो मानव-जगत् पतनकी ही ओर जा रहा है। इस स्थितिमें जो लोग मानव-जीवनके असली उद्देश्यको समझकर अपना जीवन सफल करना चाहते हैं, उनका व्यक्तिगत रूपसे यह कर्तव्य है कि वे सबसे पहले अपनेको 'आत्मा' समझें और सबको अपने उसी आत्माका अभिन्न स्वरूप मानें। यह स्मरण रहे कि हम पहले एक आत्मा हैं, पीछे अमुक देशवासी हैं, अमुक धर्मसम्प्रदायके हैं, अमुक जातिके हैं, अमुक प्रान्तके हैं, अमुक भाषा-भाषी हैं, अमुक परिवारके हैं और अमुक व्यक्ति हैं। जिस किसी विचार या क्रियासे अपने आत्मस्वरूपपर आघात पहुँचता हो, उससे सावधानीके साथ बचे रहें। यही परम कर्तव्य है।

'शिव'

पागलकी झोली

['तुम' की तोप]

(लेखक—महात्मा श्रीश्रीसीतारामदास ओंकारनाथजी महाराज)

पागल एक दिन अपने मनसे ही—राम-राम ! 'तुम'की तोप' 'तुम'की तोप'—ऐसा बोल रहा था। इसी समय रामदासने आकर कहा—अरे पागल बाबा ! यह 'तुम' की तोप आखिर क्या है ?

पागल—'तुम' की तोपसे सब कुछ उड़ा देनेके बाद बस, उसी समय तुम, मैं आनन्द-आनन्द— सब कुछ एकाकार हो जाता है—यह कैसा आनन्द है। राम राम सीताराम !

राम—'तुम'की तोपके माने क्या है ?

पागल—सीताराम। इस आकाशमें दाग दो 'तुम'की तोप, बस, आकाश गायब, केवल तुम ही। गङ्गामें मारो 'तुम'की तोप, गङ्गा नहीं—वहाँ भी केवल तुम। समुद्रपर चला दो 'तुम'की तोप, समुद्र नहीं—केवल तुम, केवल तुम। इन पेड़-पौधोंपर चला दो 'तुम'की तोप, बस, पेड़-पौधे नहीं, केवल तुम। पशुओंपर दाग दो 'तुम' की तोप, पशु नहीं, केवल तुम। इस मानव-समुदायपर चला दो 'तुम'की तोप, मानव नहीं, केवल तुम। इस मायीपर चला दो 'तुम'की तोप, मायी नहीं, केवल तुम। अरे, तुम, केवल तुम ही तुम। रे ! सब तुम ही तुम रे !

राम—इसका मतलब तो बुरा नहीं है, 'तुम' की तोप मारकर उसके बाद क्या करना होगा ?

पागल—राम राम ! प्रणाम करना, सीताराम। जो देखना, जो सुनना, जो खाना—सब 'तुम'की तोपसे उड़ा देना। फिर कुछ भी अलग-अलग नहीं रह जायगा। केवल तुम ही हो जायगा। आनन्द, सुख, अभय, अमृतरस—ये सब तुम ही हो। सर्वथा आनन्दमें, रसमें, अभयमें और अमृतमें लिपट-चिपटकर ऐसे नाचना आरम्भ कर दो। (पागल नाचने लगता है)

राम—रुको रुको पागल बाबा ! मान लो बाहरका सब कुछ उड़ा दिया 'तुम'की तोपसे, किंतु भीतरका

घसर-फसर, चिल्ल-पों—पूजा करने बैठनेपर जूने खरीदना, रामका ध्यान करने बैठनेपर खाक-पत्थरका चिन्तन करना—इन सबका क्या उपाय है ?

पागल—सीताराम। इन सभीको 'तुम'की तोप से उड़ा देना होगा! जप करने बैठनेपर मनमें आया आज किसान हो गया हूँ, शीघ्र उठना होगा। मारो 'तुम'की तोप, किसान तुम। ठीक काम करो—करो जप।

फिर मनमें आया हरेकृष्णने मुझे बहुत गालियाँ दीं। तुरंत 'तुम'की तोप दाग दो। हरेकृष्ण होकर 'तुम'ने मेरे पापोंका क्षय कर दिया, फिर जप चालू कर दो। मन बोला—लड़का उच्छृङ्खल हो गया है। मार दो 'तुम'की तोप। उड़ जायगा लड़का और उसकी उच्छृङ्खलता। बहू बड़ी बातूनी है—दाग दो 'तुम'की तोप, बहू उड़ जायगी और उसी जगह देखोगे कि 'तुम' खड़े हँस रहे हो। कुत्ता, बिल्ली, सियार, भला-बुरा, काम, क्रोध, लोभ, लोगोंकी आँखोंमें धूल झोंकनेके लिये साधुवेष सजना—जो भी तुम्हारे सम्मुख आकर उपस्थित हो—सीताराम। धायँ धायँ धायँ करके 'तुम'की तोपसे सबको उड़ा दो। फिर 'तुम' के अनन्त साम्राज्यमें तुम्हारे 'तुम'का तुम अभिषेक कर दो। तब आसपास, आगे-पीछे, रोग-शोकमें, अभावमें अथवा साधुवादमें सर्वत्र 'तुम' को देखते-देखते तुम भी 'तुम'मय हो जाओगे, राम-राम सीताराम!

राम—यह बात मनमें रहे तब न ?

पागल—राम-राम करो, खाली राम-राम। वैसा होनेपर मनमें रहेगी। साधारण तोपकी एक सीमा होती है, किंतु यह 'तुम'की तोप असीम अनन्त अखण्ड है; यह तोप कभी समाप्त नहीं होगी। इसे कोई छीन नहीं सकेगा। उड़ाओ-उड़ाओ 'तुम'की तोपसे दृश्यमात्रको, उड़ाकर चलो उस अभय आनन्द अमृतके महासाम्राज्यमें।

राम-राम सीताराम बोलते हुए पागलने नाचना शुरू कर दिया। रामदास अब उसका नृत्य नहीं रोक सका।

दृढ़ निश्चय कीजिये

दृढ़ निश्चय कीजिये—

१—श्रीकृष्ण सर्वत्र हैं।

२—श्रीकृष्ण सर्वसमर्थ हैं।

३—श्रीकृष्ण सर्वज्ञ, सर्वविद् हैं।

४—श्रीकृष्ण सर्वसुहृद् हैं।

(१) भगवान् सर्वत्र हैं अर्थात् वे नित्य-निरन्तर सभी जगह मेरे साथ ही हैं।

(२) श्रीकृष्ण सर्वसमर्थ हैं अर्थात्—भगवान् अनन्त, अपरिसीम, असमोर्द्ध्व सामर्थ्यवान् हैं। वे असम्भवको भी तुरंत सम्भव कर सकते हैं। उनके लिये असम्भव कोई वस्तु है ही नहीं।

(३) श्रीकृष्ण सर्वज्ञ, सर्वविद् हैं अर्थात्—अनन्त विश्व-ब्रह्माण्डमें अनादिकालसे इस क्षणतक कहाँ, कब, क्या कैसे हो चुका है; अभी इस क्षण कहाँ, क्या, कब, कैसे होगा—इसे वे अभी प्रत्यक्षरूपसे जान रहे हैं। उनके लिये सब कुछ वर्तमान है। भूतकाल, भविष्यकाल उनके लिये नहीं है। अतएव वे मेरे मनकी स्थितिको, मुझसे सम्बद्ध सभी कुछको निरन्तर जान रहे हैं।

(४) भगवान् सर्वसुहृद् हैं अर्थात् मेरे परम मित्र हैं, उनके हृदयमें मेरे लिये अनन्त, अपरिसीम, प्यारका समुद्र नित्य-निरन्तर लहरा रहा है।

आज इस क्षणसे मैं निश्चय कर रहा हूँ कि उपर्युक्त चारों भावोंको अपने मनमें पूर्णरूपसे प्रतिष्ठित करनेका प्रयास करूँगा और भगवान्‌की कृपासे यह अवश्य होगा, होगा, होगा।

श्रीमद्भागवतमहापुराणकी विलक्षण महिमा

एक परलोकगत आत्माने अपने उद्धारके लिये घरवालोंसे श्रीमद्भागवत-सप्ताह करानेकी याचना की और सप्ताह करानेपर उसे सद्गति प्राप्त हुई

[परमपूज्यपाद श्रीमज्जगद्गुरु शंकराचार्य गोवर्धन-पीठाधीश्वर श्रीस्वामी श्रीनिरंजनदेवतीर्थजी महाराजके श्रीमुखसे सुनी बिल्कुल सत्य घटना]

(लेखक—भक्त श्रीरामशरणदासजी, पिलखुवा)

गत दिसम्बर सन् १९६९ में भारतके सुप्रसिद्ध तीर्थ वाराणसीमें भारतके सुप्रसिद्ध महान् धर्माचार्य परमपूज्यपाद श्रीमज्जगद्गुरु शंकराचार्य गोवर्धनपीठाधीश्वर अनन्त-श्रीविभूषित श्रीस्वामी श्रीनिरञ्जनदेवतीर्थजी महाराज पधारे थे। उन्होंने श्रीमद्भागवतमहापुराणके सप्ताहकी अद्भुत महिमाके सम्बन्धकी अपने स्वयंकी जाँच की हुई एक महान् आश्चर्यजनक सत्य घटना सुनायी थी, जिसे मैंने आपके श्रीचरणोंमें बैठकर अपनी डायरीमें नोट कर लिया था। वह घटना नीचे दी जा रही है। आशा है, पाठक इसे बड़े ही ध्यानसे पढ़नेकी कृपा करेंगे। इसमें कहीं भी गलती रह गयी हो वह सब मेरी है, पूज्यपाद श्रीश्रीआचार्यचरणकी नहीं।

मैंने पूज्य महाराजजीसे पूछा—

प्रश्न—पूज्य महाराजजी! परलोकगत आत्मा भी पुराण सुननेकी माँग करती है, क्या यह बात सत्य है?

पूज्य जगद्गुरुजी—बिल्कुल सत्य है।

प्रश्न—क्या इस बातका प्रत्यक्ष प्रमाण है?

पूज्य जगद्गुरुजी—ऐसी कितनी ही बिल्कुल सत्य घटनाएँ हैं कि जो हमने स्वयं देखी हैं।

प्रश्न—महाराजजी! क्या आप कोई घटना सुनानेकी कृपा करेंगे?

पूज्य जगद्गुरुजी—घटनाएँ तो बहुत-सी हैं। आज हम आपको एक बिल्कुल नयी सत्य घटना सुनाते हैं, जो इस प्रकार है—

यह कोई पुरानी या सुनी-सुनायी बात नहीं है, अपितु अभी नयी घटी एक बिल्कुल सत्य घटना है।

उत्कल देशके विख्यात कटक नगरमें एक गुलाबराय मांडूमल नामक सुप्रसिद्ध फर्म है। 'भारतमाता गुडाकू फैक्ट्री'की वह फर्म मालिक हैं। लगभग तीन वर्ष हुए, उनकी एक विवाहिता युवती पुत्रीका शरीरान्त हो गया था और वह मरकर भूतयोनिको प्राप्त हो गयी। उसकी एक चचेरी बहन थी, जो आयुमें उससे बड़ी थी; भूतयोनि-प्राप्त वह आत्मा अपनी उस चचेरी बहनको परेशान करने लगी। उसके बन्धु-बान्धवों और घरवालोंने तथा आजकलके अंग्रेजी पढ़े-लिखे बुद्धिमान् लोगोंने इसे हिस्टीरियाकी बीमारी बताकर डाक्टरोंसे इलाज करानेकी सलाह दी। घरवालोंने सबकी सलाह मानकर अच्छे-से-अच्छे प्रमुख डाक्टरोंके द्वारा उसकी चिकित्सा करायी। चिकित्सामें अपने हजारों रुपये खर्च किये; पर लाभ कुछ भी नहीं हुआ। उस चचेरी बहनकी बीमारी घटनेके बजाय और भी ज्यादा बढ़ती चली गयी। जब अपने शहरके बड़े-बड़े डाक्टरोंसे भी उसे कोई लाभ प्रतीत नहीं हुआ तो उन डाक्टरोंकी और अच्छे आदमियोंकी सलाह मानकर उसके घरवाले उसे इलाजके लिये कलकत्ता, बम्बई आदि बड़े-बड़े शहरोंमें ले गये और वहाँके बड़े-से-बड़े प्रतिष्ठित डाक्टरोंसे उसका इलाज कराया गया। कहा जाता है कि इस इलाजमें उनके पचीस-पचास हजार रुपये खर्च हो गये। खुलकर पैसा खर्च करनेपर

भी बीमारी एक प्रतिशत भी कम नहीं हुई, वरं वह बढ़ती चली गयी। अब तो उसके घरवाले ही नहीं, अपितु अड़ोस-पड़ोसके लोग भी परेशान हो गये और समझ नहीं पाये कि वास्तवमें क्या बीमारी है।

जब घरवाले इलाज कराते-कराते थक गये और चारों ओरसे निराश हो गये तो एक दिन उस चचेरी बड़ी बहनके शरीरमें आकर परलोकगत छोटी बहनकी आत्माने कहा—'इसे बीमारी कुछ भी नहीं है। यह बहन मेरे कारण परेशान है और मैं स्वयं भी इस समय बड़ी परेशान हूँ। अपने किसी पूर्वजन्मके पापोंके फलस्वरूप मैं इस समय पिशाच-योनिके दुःख भोग रही हूँ। जबतक मेरी इस पिशाच-योनिसे मुक्ति नहीं होगी, तबतक मेरी इस बहनका लाख इलाज करानेपर भी रोगसे छुटकारा नहीं होगा और इसे सुख-शान्ति नहीं मिलेगी।'

घरवालोंके यह प्रश्न करनेपर कि 'तुम्हारी इस पिशाच-योनिसे मुक्ति होनेका और तुम्हें शान्ति प्राप्त होनेका साधन क्या है? वह हमें बताओ तो हम उसके अनुसार करें।' उत्तरमें पिशाच-योनिको प्राप्त उस परलोकगत आत्माने कहा कि "मेरी मुक्ति और मेरी सद्गतिका एकमात्र उपाय है—'श्रीमद्भागवत-सप्ताह-श्रवण'। श्रीमद्भागवत-सप्ताह-श्रवणके अतिरिक्त आप चाहे लाखों रुपये खर्च करें, न तो इसका इलाज होगा, न मुझको ही इस प्रेतयोनिसे छुटकारा मिलेगा। इसलिये यदि आप चाहते हैं कि मेरी बहन भी रोगमुक्त हो जाय और मुझे भी इस पिशाच-योनिसे छुटकारा मिल जाय तथा मुझे सद्गति प्राप्त हो जाय तो आप शीघ्र-से-शीघ्र विद्वान् ब्राह्मणको बुलाकर उनके द्वारा हमारे कल्याणके निमित्त श्रीमद्भागवत-सप्ताह-श्रवणका आयोजन कीजिये।"

उसके माता-पिताने और भाई आदिने इसी वर्ष संवत् २०२६ भाद्रपदमें उसके कथनानुसार एक सनातनधर्मी विद्वान् ब्राह्मणको बुलाकर उनके द्वारा श्रीमद्भागवत-सप्ताह-श्रवण प्रारम्भ करा दिया।

श्रीमद्भागवत-सप्ताहकी कथा तो प्रारम्भ हो गयी, किंतु घरवाले तथा वे कथावाचक पण्डितजी महाराज वहाँपर बाँस गाड़ना भूल गये, जो श्रीमद्भागवत-सप्ताहके शुभ अवसरपर एक बाँस गाड़नेकी बहुत प्राचीन शास्त्रीय प्रथा है। कहा जाता है कि परलोकगत आत्मा उसपर बैठकर कथा सुनती है। उस परलोकगत 'आत्माको यह बात बड़ी खटकी और उसने फिर अपनी उस चचेरी बड़ी बहनके शरीरमें प्रवेश करके कहा कि 'आपने श्रीमद्भागवत-सप्ताह-श्रवण कराना तो प्रारम्भ अवश्य करा दिया है, किंतु यहाँपर मेरे बैठनेके लिये श्रीमद्भागवत-सप्ताहके नियमके अनुसार बाँस नहीं गाड़ा, जिसपर बैठकर मैं श्रीमद्भागवत-सप्ताहका श्रवण करती। सबको पता है कि उस बाँसपर बैठकर प्राचीनकालमें धुन्धुकारी नामक प्रेतने गायके पेटसे पैदा हुए गोकर्ण नामक अपने भाईसे श्रीमद्भागवत-सप्ताह सुनकर मुक्ति प्राप्त की थी। फिर बताओ, मैं कहाँपर बैठकर श्रीमद्भागवतकी परम पावन कथा सुनकर मुक्ति लाभ करूँ?'

अब तो उस परलोकगत आत्माकी इस शास्त्रीय बातको सुनकर सबने अपनी गलती स्वीकार की और वहाँपर बाँस गाड़ा। किंतु बाँसके गाड़नेपर भी एक भूल यह रह गयी कि बाँसके ऊपर जो कपड़ा लपेटा जाता है, वह कपड़ा लपेटना भूल गये।

परलोकगत आत्माने पुनः अपनी चचेरी बड़ी बहनके शरीरमें आकर कहा—'आपने इस बाँसपर कपड़ा नहीं लपेटा है, फिर भला इस नंगे बाँसपर मैं किस प्रकार बैठ सकती हूँ? नंगे बाँसपर बैठनेसे वह बाँस मेरे चुभता है, इसलिये तुरंत उस बाँसपर कपड़ा लपेट दो जिससे वह बाँस चुभे नहीं और मैं शान्तिसे बैठकर श्रीमद्भागवतका सप्ताह श्रवण कर सकूँ?' तब घरवालोंने

तुरंत उस नंगे बाँसपर कपड़ा लपेटा और अपनी गलती स्वीकार की तथा उस आत्मासे इस भूलके लिये क्षमा माँगी।

इस बातकी चर्चा अड़ोस-पड़ोस और टोले-मोहल्लेमें सर्वत्र फैल गयी। सभी लोग सुनकर बड़े आश्चर्यचकित रह गये। अब तो श्रीमद्भागवत-सप्ताह-श्रवण करनेके लिये और जीवित व्यक्तिके द्वारा कही गयी परलोकगत आत्माकी बातें सुननेके लिये हजारों मनुष्योंकी भीड़ सप्ताहकथामें लगने लगी और इस महान् आश्चर्यजनक सत्य घटनासे पुनर्जन्म, पुराण, वेद-शास्त्र और उनके द्वारा बताये गये उपायोंपर लोगोंका विश्वास बढ़ता गया।

अन्तमें उस आत्माने अपने भाइयोंसे और अपनी मातासे कहा कि 'हमारे पिताजीकी भी मुक्ति नहीं हुई है; क्योंकि आजकलके लोग अपने माता-पिताकी सम्पत्ति तो लेते हैं, किंतु उनकी अन्त्येष्टि और उनके निमित्त श्राद्ध-तर्पण, ब्राह्मणभोजन, दान-पुण्य इत्यादि शास्त्रीय कर्म विधि-विधानोंके द्वारा श्रद्धा-विश्वासपूर्वक नहीं करते। इसलिये उन माता-पिताओंको अधोगतिमें जाना पड़ता है। अतएव आप पिताजीकी मुक्तिके लिये भी श्रीमद्भागवत-सप्ताह करवाना, तभी उनकी मुक्ति होगी।'

इन सब घटनाओंको सुनकर कलकत्तेसे उस परलोकगत आत्माकी सास भी श्रीमद्भागवत-सप्ताहमें भाग लेनेके लिये वहाँपर आ गयी। उस आत्माने अपनी चचेरी बहनके शरीरमें प्रवेश करके अपनी उस साससे कहा कि 'इस श्रीमद्भागवत-सप्ताह करानेका जो भी खर्च होगा उस सब खर्चको आप मेरे ससुरालवालोंकी तरफसे दिलवाना; क्योंकि मरनेके बाद विवाहिता स्त्रीकी सारी उत्तरक्रिया करनेका दायित्व ससुरालवालोंपर ही होता है, माता-पिता अथवा भाई-बन्धुओंपर नहीं। अतः यदि आप इस श्रीमद्भागवत-सप्ताहका खर्च नहीं देंगे तो मेरे माता-पिताके द्वारा खर्च होनेवाले सप्ताहसे मेरी मुक्ति न होगी।' सासने इसे सहर्ष स्वीकार कर लिया। इधर श्रीमद्भागवत-सप्ताह सानन्द समाप्त होनेपर वह आत्मा सद्गतिको प्राप्त हो गयी और इधर उसकी जीवित चचेरी बहन भी सब प्रकारके रोग-शोकसे मुक्त हो गयी। आज वह पूर्ण स्वस्थ है और उसके सारे घरवाले भी आनन्द मना रहे हैं।

यह है श्रीमद्भागवत महापुराणकी अद्भुत महिमा जिसके सुनने मात्रसे परलोकगत आत्माको पिशाच-योनिसे तत्काल छुटकारा मिल गया, उसकी सद्गति हो गयी। जो ऐसे परम कल्याणकारी पुराणोंकी निन्दा करते हैं, वे अपना और अपनी संतानका तथा अपनी हिंदूजाति एवं देशका कितना अहित कर रहे हैं, यह विचारणीय है। इस सत्य घटनासे सिद्ध हो जाता है कि हमारे शास्त्र-पुराणोंकी सभी बातें अक्षर-अक्षरसे बिल्कुल सत्य हैं। आशा है पाठक अपने सत्य सनातनधर्मके प्राण इन पुराणोंकी अद्भुत महत्ताको समझेंगे और इन पुराणोंके बताये अनुसार चलकर सनातनधर्मकी शरणमें रहकर अपना और अपने देश-जातिका परम कल्याण करेंगे।

बोलो सनातनधर्मकी जय।

दिव्यलोकमें कौन जाते हैं ?

सत्य-धर्मरत, अनासक्त जो धर्म-कमाईपर निर्भर।
जननी-बहिन-सुता सम जो परनारीको लखते नरवर॥
चोरी रहित, नित्य-निज स्थितिमें तुष्ट, बोलते सदा मधुर।
किसी हेतु जो झूठ न कहते, रहते सदा सत्यपर स्थिर॥
परद्रोहवर्जित, समदर्शी, दयाशील, जो नहीं निठुर।
भजन-परायण, निष्कामी वे दिव्यलोकमें जाते नर॥

सत्सङ्ग-वाटिकाके बिखरे सुमन

१–भगवद्भजनकी मुख्य तीन वृत्तियाँ हैं—अनन्य, मुख्य और गौण। अनन्य वृत्तिमें कोई प्रयत्न नहीं होता। वहाँ भजन स्वाभाविक होता है, जैसे श्वास लेनेमें हमें प्रयत्न नहीं करना पड़ता, श्वास स्वाभाविक रूपसे आता है। मुख्य वृत्तिमें अन्य वस्तुओंकी महत्ता भी साथमें रहती है, पर उनकी ओरसे मनको हटाकर भजनमें मुख्यभाव किया जाता है। गौण वृत्तिमें भजनकी अपेक्षा अन्य वस्तुओंका महत्त्व विशेष हो जाता है। अन्य वस्तुओंकी हानि नहीं होनी चाहिये, फिर चाहे भजन हो या न हो—यह गौण वृत्तिका रूप है। पर जहाँ उपेक्षा ही नहीं, अवहेलना होती है, वहाँ गौण वृत्ति भी नहीं रहती। वर्तमान युगमें भगवान् एवं भजनके प्रति अवहेलना है, जान-बूझकर इनकी अवज्ञा की जाती है। यह स्थिति बड़ी दयनीय है।

२–वृत्तिके अनुसार जीवन बनता है। भीतरके विचार मनुष्यके जैसे होते हैं, वह वैसा ही है; वही उसका वास्तविक रूप है। मनुष्यके भीतरी विचार कैसे हैं, यह उसे ही सबसे अधिक ज्ञात होते हैं। अतः अपने स्वरूपका ज्ञान स्वयं मनुष्यको जितना होता है, उतना अन्यको नहीं। मनुष्यको चाहिये अपने भीतरी स्वरूपको भगवन्मय, भजनमय बनावे, बाहरी रूप स्वाँगके अनुरूप जो हो।

३–साधकका सबसे पहला काम है—अपने चिन्तनको बदलना। भागवतमें गोपियोंका जो स्वरूप वर्णित है, उसमें गोपियाँ 'भगवन्मनस्काः' हैं, हम आज 'भोगमनस्काः' बने हुए हैं।XXXX ऊपरकी क्रियामें भेद न होनेपर भी मनके भावके अनुसार उसमें भेद होता है। दो व्यक्ति भोजन करते हैं—एक शरीर-रक्षाके लिये, दूसरा स्वादके लिये। दोनोंकी क्रिया एक-जैसी होनेपर भी; भीतरके भाव-भेदके कारण दोनोंमें बड़ा अन्तर है।

४–जिस मनुष्यको अपनी उन्नति करनी है, उसे सबसे पहले अपनेको बुरे सङ्गसे बचाना चाहिये। बुरा सङ्ग मनुष्यका ही हो, सो बात नहीं है। वातावरण, परिस्थिति, वस्तु, विचार—सब बुरे सङ्ग हो सकते हैं। जिस व्यक्ति, वातावरण, परिस्थिति, वस्तु, विचार आदिके द्वारा तीन चीजें हों—भगवान्की ओरसे चित्तकी वृत्ति हटे, भोग-विषयोंके प्रति रुचि बढ़े एवं विषयोंकी प्राप्तिके लिये पापकी ओर प्रवृत्ति हो—समझ लेना चाहिये वह हमारे लिये 'कुसङ्ग' है।

५–आरोग्य-लाभके लिये कुपथ्यका त्याग, औषध-सेवन एवं सुपथ्यका ग्रहण—ये तीन चीजें अनिवार्य हैं। साधनामें भी इन तीन चीजोंकी नितान्त आवश्यकता है—जैसे भवरोग बढ़ानेवाले जितने भी हेतु हैं, उनका त्याग; भगवत्स्मरण-चिन्तनरूप औषधका सेवन और भगवान्की ओर रुचि उत्पन्न करानेवाले सङ्गका ग्रहण। इन तीनोंमेंसे एकका भी अभाव नहीं होना चाहिये।

६–'गोपीभाव'—यह भोगका मार्ग है ही नहीं। इसे भोगका मार्ग समझकर चलनेसे ही गड़बड़ होती है। इसमें तो त्याग-ही-त्याग है, त्यागकी स्मृतिका भी त्याग है। भोगोंकी महत्ताकी विस्मृति ही नहीं, उनके अस्तित्वका लोप एवं त्यागकी स्मृतिकी विस्मृति जहाँ होती है, वहीं 'गोपीभाव' है।

७–जिस त्यागमें सहज सुखकी अनुभूति नहीं होती वह त्याग त्याग नहीं है। जबतक त्यागमें अभिमान है, त्यागकी स्मृति है, त्यागी हुई वस्तुकी महत्ता बनी है, तबतक त्याग स्वाभाविक नहीं है।

८–प्रेम 'देना' जानता है, 'लेना' नहीं जानता। प्रेममें बहुत मिलता है, पर प्रेमी लेना नहीं चाहता, वह तो निरन्तर देता-ही-देता है।

९–साधकको चाहिये कि वह दूसरोंकी समालोचनाकी परवा न करे तथा दूसरे करें तो हम करेंगे—इस भावको हृदयमें न आने दे। वह अकेला किसीकी परवा न करता हुआ सतत अपनी साधनामें लगा रहे।

१०–जिसको जगत्के सुख कम प्राप्त हैं, उसे भगवान्का वरदान प्राप्त है। पर मनुष्य ऐसी स्थितिमें भगवान्के वरदानका दर्शन नहीं करता।

११–अत्यन्त दीनतायुक्त सेवाका भाव जिस सेवकमें होता है, उसमें यह विलक्षणता होती है कि वह अपनेको कुछ पानेका अधिकारी मानता ही नहीं। 'अपनी सेवाके बदलेमें कुछ लेना नहीं'—यह अभिमान और 'मैं कुछ नहीं लेता'—यह त्यागवृत्ति—उसमें नहीं होती। वह तो अपनेको

सर्वथा अयोग्य अनुभव करता है और यह मानता है कि इस अयोग्य स्थितिमें यदि मुझे नीची-से-नीची कोई भी सेवा मिल जाय तो उससे बढ़कर मेरा क्या सौभाग्य होगा ? भगवान् श्रीराधा-माधवकी निकुञ्ज-लीलामें 'मञ्जरी भाव'को सबसे श्रेष्ठ माना गया है । मञ्जरीका काम यही है कि वह दीन-से-दीन, हीन-से-हीन काममें भी परम उल्लाससे लगी रहती है । झाड़ू देना, जूते साफ करना, पीकदान साफ करना आदिमें वह मस्त रहती है । ये काम या तो वेतनभोगी करते हैं या जिससे सबसे अधिक अन्तरङ्गता होती है, वे करते हैं । मञ्जरी अन्तरङ्गताका आदर्श है । मञ्जरी इससे ऊँची सेवा करना नहीं चाहती । वह डरती है कि कहीं मन्त्रणा करना, साथ बैठना आदिके कारण उसकी सेवा छूट न जाय । वास्तवमें वह अपनेमें ऊँचा काम करनेकी योग्यता ही नहीं मानती, वह तो यही अनुभव करती रहती है कि जो सेवा उसे प्राप्त है, वह उसे भी यथोचितरूपमें नहीं कर पाती । इन दोनों वृत्तियोंके कारण उसके हृदयमें अभिमान झाँकतक नहीं पाता । फिर भगवान्‌के द्वारा सुख एवं सम्मान पानेकी तो उसमें कल्पनातक नहीं हो सकती ।

१२–साधक कभी यह न समझे कि हम भगवत्प्रेमकी प्राप्तिके अयोग्य हैं । अपने दैन्य एवं भगवत्कृपाके बलसे अपनेको सदा भगवान्‌के प्रेमको प्राप्त करनेके योग्य माने ।

१३–भगवान् भक्तवाञ्छाकल्पतरु हैं । जो उनसे प्रेम चाहेगा, उसे प्रेम मिलेगा, जो मुक्ति चाहेगा, उसे मुक्ति मिलेगी और जो भोग चाहेगा, उसे भोग मिलेंगे । विश्वासपूर्वक जो भगवान्‌से भोगकी कामना करता है, उसके लिये नवीन प्रारब्धका निर्माण होकर भोग प्राप्त हो जाते हैं । पर भगवत्प्रेमके सामने नश्वर भोगोंकी चाह करना मूर्खता है ।

१४–भगवद्विश्वासका मूर्त रूप वह है, जहाँ भगवान्‌के अतिरिक्त अन्य किसीका स्मरण-चिन्तन न हो ।

१५–प्रेमी भक्तोंकी दृष्टिमें वह मुक्तिसुख भी त्याज्य है, जो भगवत्प्रेम-सुखका विघातक है ।

१६–धन-सम्पत्ति, स्त्री-पुरुषका जागतिक सम्बन्ध एवं मान-बड़ाई—इन तीनसे जो जितना बचा रहेगा, वह उतना ही सुरक्षित है । मनसे बचना सर्वोत्तम है, पर शरीरसे भी इन तीनोंसे यथासम्भव बचता रहे । यह ऐसा कोढ़का रोग है, जो अनजानमें लग जाता है ।

१७–नश्वर 'रूप', पूजा और 'नाम'का नाम—यह ऐसा व्यामोह है कि उससे बचना बड़ा कठिन है । अतएव साधकको सदा इनसे सावधान रहना चाहिये ।

१८–भगवत्सेवाधिकार शास्त्रोंमें बहुत ऊँचे अधिकारका पदार्थ माना गया है । वह सरलतासे प्राप्त नहीं होता ।

१९–सच्चे सेवकमें यह भाव कभी उदय नहीं होता कि 'इतने दिन हो गये, हमपर ध्यान नहीं दिया जा रहा है । हमारे साथवाले दूसरे साधक स्वामीकी कृपा प्राप्त कर चुके हैं, वे स्वामीके साथ रहने लगे हैं, साथ खाते-पीते हैं ।' वे तो यहाँतक सावधान रहते हैं कि स्वामी हमारी सेवाको जानतक नहीं पावें । यदि स्वामी हमारी सेवा जान जायँगे तो वे सामने हमारे संतोषके लिये चाहे प्रशंसा न भी करें, पर अपने मनमें तो हमारी प्रशंसा करेंगे ही और यह हमारे लिये सबसे अधिक दुःखकी बात होगी । कारण, हममें सेवा करनेकी तनिक भी योग्यता नहीं है, यह तो स्वामीकी महानता है कि वे हमारी त्रुटियोंसे भरी सेवाको स्वीकार कर लेते हैं ।

२०–कौन-सी सेवाका कितना महत्त्व है, यह सेवाके स्वरूपपर निर्भर नहीं करता, सेवकके भावपर निर्भर करता है । मामूली-से-मामूली वस्तु भी भावके अनुसार अमूल्य हो जाती है ।

२१–मनुष्य सब कुछ त्याग करके भी 'त्यागी' कहलाना चाहता है । अधिकतर तो ऐसे व्यक्ति होते हैं जो त्याग न करके भी त्यागी कहलाना चाहते हैं । पर जो सत्पुरुष हैं, समझदार हैं, वे भी यह चाहते हैं कि हमारे सत् कर्मको लोग जानें और उसकी प्रशंसा करें । पर साधनाकी दृष्टिसे यह बहुत हानिकारक है । साधनामें त्यागके महत्त्वकी विस्मृति नितान्त आवश्यक है ।

२२–जिसका जीवन सेवामय है, उसमें लोकैषणा नहीं रहती । लोकरंजन बहुत बड़ा विष है, मीठा विष है । सच्चा सेवक लोकैषणाकी तो इच्छा रखता ही नहीं, स्वामीके द्वारा भी किसी रूपमें प्रशंसाके शब्द सुनना तक नहीं चाहता । वह बस इतना चाहता है कि उसे नीची-से-नीची सेवा नित्य मिलती रहे । ऊँची सेवाकी अपनेमें वह योग्यता ही अनुभव नहीं करता ।

२३–सेवाधिकार प्राप्त करनेके लिये दो चीजें आवश्यक हैं—सेवाका अभिमान न होना तथा सेवाके बदले प्रशंसा

न चाहना, अपितु सेवाके प्रति आसक्ति होना। सेवामें उन्नति चाहना भी कामना एवं अभिमानको प्रकट करता है।

२४—भगवत्-कैङ्कर्यको बहुत ऊँचा स्थान दिया जाता है। कारण, भगवान्का किंकर मानता है कि हममें कहाँसे पुण्य आया, कहाँसे योग्यता आयी। हमारा तो सर्वाङ्ग दूषित है। यह तो भगवान्का सहज स्वभाव है कि वे निजजनके दोष नहीं देखते। इसीसे वे हमें सेवाका अवसर देते रहते हैं।

२५—सेवाका बड़ा सीधा भाव यह है कि सेवक अपने अभिमान एवं ममत्वको भगवान्के अर्पण कर दे अर्थात् अपने मनमें वह यह मान ले कि 'मैं भगवान्का हूँ और भगवान्के सिवा कुछ भी मेरा नहीं है', 'मैं भगवान्के सिवा किसीका नहीं हूँ'—यह मानना अभिमानका अर्पण है और 'भगवान्के सिवा कुछ भी हमारा नहीं है' यह मानना ममत्वका अर्पण है।

२६—'दैन्य' भगवान्को प्रिय है, 'अभिमान' अप्रिय है—यह नियम है।

२७—'मुझमें अच्छी-से-अच्छी सेवा करनेकी सामर्थ्य है, योग्यता है, मैं ऊँची-से-ऊँची सेवा कर सकता हूँ'—यह वृत्ति सच्चे सेवकमें कभी नहीं आती। वह तो बराबर डरता रहता है कि मेरी सेवामें कोई भूल न हो जाय तथा मैं भी सेवा करता हूँ—यह बात स्वामी जान न जायँ।

२८—सेवामें जहाँ ऊँच-नीचका भेद है—अमुक सेवा ऊँची है, अमुक सेवा नीची है—वहाँ सेवामें 'सेवा' वृत्ति नहीं है। इसी प्रकार जहाँ सेवाकी कीमत आँकी जाती है, सेवाके स्वरूपका निर्धारण होता है—कौन-सी सेवा मेरे योग्य है, कौन-सी नहीं—वहाँ भी वास्तविक सेवा नहीं। जो सेवा केवल सेवाकी भावनासे होती है, वही सेवा है।

२९—हमारे पास तीन चीजें हैं—शरीर, मन एवं बुद्धि। इन तीनोंसे हम जिन-जिन वस्तुओंका, विचारोंका, क्रियाओंका सेवन करते हैं, उन-उनमें हमारी आसक्ति हो जाती है। हम जिस प्रकारकी परिस्थितियोंमें रहते हैं, जिस प्रकारकी बातें सोचते, सुनते, कहते हैं, इन्द्रियोंद्वारा जिस प्रकारकी वस्तुएँ ग्रहण करते हैं—वैसे ही हम बनते चले जाते हैं। ये शुभ होते हैं तो हमारा जीवन शुभ बनता जाता है, ये अशुभ होते हैं तो हमारा जीवन अशुभ होता जाता है। अतएव शरीर, मन एवं बुद्धिको सदा शुभमें लगावें।

३०—हमारे जीवनको जो भगवान्से हटाकर जगत्की ओर ले जाय, हमें उन सभी वस्तुओं, परिस्थितियों, विचारों, क्रियाओं एवं व्यक्तियोंको अशुभ समझना और उनसे बचना चाहिये।

३१—मनुष्ययोनि कर्मयोनि है। अतः मनुष्य क्षणभर भी कर्म किये बिना नहीं रह सकता, चाहे वह कर्म मानसिक ही हो। इसलिये मनुष्यके पास सदा इतने शुभ कर्म करनेके लिये रहने चाहिये कि उसे व्यर्थकी बात विचारने, स्मरण करने, सुनने, करनेका अवकाश ही न मिले।

३२—साधकको चाहिये कि वह निरन्तर भगवत्-सम्बन्धी संस्कार ही मनमें भरे, जिससे भगवत्सम्बन्धी बातें ही मनमें उदय हों और वैसी ही क्रियाएँ बनें। जगत्के संस्कार मनमें भरनेसे जगत्की ही बातें मनमें आयेंगी और वैसी ही क्रियाएँ होंगी।

३३—भोगोंका सङ्ग होनेसे भोग इतनी जल्दी जीवनमें आ जाते हैं कि वे मनुष्यको दबोच लेते हैं। मनुष्य निरुपाय हो जाता है। अतएव अपना कल्याण चाहनेवालेको निरन्तर भोगोंके सङ्गसे बचना चाहिये।

३४—जैसे कछुआ जरा-सी आवाज सुनते ही अपने अङ्गोंको समेट लेता है, वैसे ही भोगोंके मनोवेग उदय होते ही अपनी वृत्तियोंको उधरसे समेट लेना चाहिये। तभी रक्षा हो सकती है, अन्यथा भोग हमें परास्त कर ही डालेंगे।

३५—साधकको चाहिये कि वह अपनी आवश्यकताओंको दिन-प्रतिदिन कम करता जाय और उसके हितैषियोंको चाहिये कि वे भोगोंमें आसक्ति उत्पन्न करनेवाली वस्तुएँ उसे देनेका आग्रह न करें।

३६—साधकको चाहिये कि वह भोगियोंसे ही नहीं, भोगियोंके सङ्गियोंसे भी दूर रहे, अन्यथा उसका भोगोंसे बचना प्रायः असम्भव है।

३७—भोगोंके चिन्तन-सेवनसे मनुष्य भोगोंका गुलाम बन जाता है और भोग उसपर स्वामित्व करने लग जाते हैं। अतएव भोग-चिन्तन एवं सेवनसे सर्वथा बचना चाहिये।

३८—जैसे किसी मकानमें बाहरसे आनेवाले दरवाजेसे ही प्रवेश पाते हैं, वैसे ही जितने भी दोष हमारे अंदर आते हैं, वे

सब आते हैं इन्द्रियोंके माध्यमसे ही । इन्द्रियाँ हमारे शरीर-रूपी मकानके दरवाजे हैं । अतएव इन्द्रियोंपर सदा सजग पहरा रखना चाहिये, जिससे उनके माध्यमसे दोष भीतर प्रवेश न पा सकें ।

३९–जो मनुष्य अपना भला चाहता है, उसके लिये यह आवश्यक है कि वह निरन्तर अपनेको देखता रहे । सदा आत्मनिरीक्षण करता रहे कि मेरे अंदर किस प्रकारके विचार आ रहे हैं । जहाँ जरा-सी बुराई भीतर आती दीखे कि बेचैन हो जाय ।

४०–भक्तिकी सीधी-सादी परिभाषा हम करें तो यह होगी—जिसने अपने मन-बुद्धिको भगवान्‌के अधिकारमें सौंप दिया ।

४१–प्रतिकूलताका त्याग और अनुकूलताका ग्रहण—शरणागतिमें पहली शर्त है । सत्य, अहिंसा, अक्रोध, दया—ये सब भगवान्‌के अनुकूल हैं; और क्रोध, हिंसा, कपट, अनाचार—ये सब भगवान्‌के प्रतिकूल हैं । अतएव शरणागत भक्तके द्वारा स्वाभाविक ही सत्य, अहिंसा, अक्रोध, दया आदिका ग्रहण होता है और क्रोध, हिंसा, कपट, अनाचार आदिका त्याग ।

४२–भगवान्‌की प्राप्तिमें कालकी अपेक्षा नहीं, साधनकी अपेक्षा नहीं, अपेक्षा है केवल भगवत्प्राप्तिकी इच्छाकी । जगत्‌की जितनी और चीजें हैं, वे इच्छासे नहीं मिलतीं । उनके लिये 'कर्म'का मूल्य देना पड़ता है । जितने अंशमें कर्म होगा, उतने अंशमें वह वस्तु हमें प्राप्त होगी और कर्मका मूल्य चुकनेपर वह वस्तु नष्ट हो जायगी । पर भगवान्‌की प्राप्ति अनन्य इच्छा होनेसे होती है और वह एक बार होनेपर फिर कभी बिछुड़ती नहीं ।

४३–भगवान्‌को पानेकी इच्छा जब अनिवार्य आवश्यकता-के रूपमें बदल जाय अर्थात् ऐसी इच्छा हो जाय कि उसकी पूर्तिके बिना हमारा काम न चले तो भगवान् प्रकट हो जाते हैं; किंतु यदि कोई भोगोंके लिये ऐसी इच्छा करे तो उसे भोग मिल ही जायँ, यह आवश्यक नहीं; क्योंकि भोगोंकी प्राप्ति होती है वैसा कर्म होनेसे । भोगोंके अधिकारी देवता कहते हैं—'अमुक भोगको प्राप्त करनेके लिये तुम्हारे मनमें तीव्र इच्छा है, पर उस भोगको प्राप्त करानेवाला कर्म तुम्हारे द्वारा सम्पादन नहीं हुआ है । अतएव तुम्हें वह भोग सुलभ नहीं हो सकता ।' पर भगवत्प्राप्तिके लिये अनन्य इच्छा होते ही भगवत्प्राप्ति हो जायगी ।

४४–आत्मनिरीक्षण परमार्थके मार्गमें सबसे आवश्यक है । बराबर इस बातका निरीक्षण होता रहे कि 'मनमें भगवान् हैं या जगत् ।' मनमें यदि जगत् है तो वह भगवान्‌के लिये है या भगवान्‌की जगहपर बैठा है ।

४५–भगवान् सबमें हैं, पर जो भगवान्‌में अपनेको मानता है या अपनेमें भगवान्‌को मानता है—उसमें भगवान् विशेषरूपमें हैं ।

४६–सबसे बड़ा भाग्यवान् वह है, जिसके मनमें कभी कोई दोष आता ही नहीं; जो सबमें, सब जगह भगवान्‌की निर्मल मनोहर मूर्ति देखता है ।

४७–मायासे बँधनेके लिये भी जो भगवान्‌का भजन करते हैं; भगवान् उनके मायाके बन्धनको काट देते हैं; क्योंकि भगवान्‌के सामने माया टिक नहीं सकती । इसीसे सकाम भक्तिकी भी महिमा है और वह अन्तमें भगवान्‌को मिला देनेवाली है ।

४८–मायाके बन्धनसे छूटनेका एक ही उपाय है—भगवान्‌के चरणोंका आश्रय लेना, सब प्रकारसे अपनेको उनपर छोड़ देना । नहीं तो, बड़े-बड़े ज्ञानी भी भगवान्‌की मायासे मोहित हो जाते हैं । नारदादि मुनियोंके उदाहरण सामने हैं । पर भगवान्‌के भजनसे भगवान्‌के शरणापन्न होनेपर माया रह नहीं सकती ।

४९–जिनका जीवन भगवान्‌से शून्य है, वे पशु-पक्षियोंसे भी अधिक बुरी स्थितिमें हैं । आजके मानवका जीवन ऐसा ही है । इसीसे जगत्‌की दुर्दशा हो रही है ।

५०–मानव-जीवन केवल एक ही कामके लिये है—भगवान्‌का भजन करके भगवान्‌को प्राप्त करना । अतएव जो धर्म-कर्म मनको भगवान्‌की ओर लगायें, वे तो धर्म-कर्म हैं, नहीं तो वे अधर्म-अकर्म, विधर्म-पापकर्म हैं ।

५१–मानव-जीवनकी सफलता या वास्तविक मानव-जीवन वही है, जो भगवान्‌के लिये है । इस कसौटीपर साधकको अपने जीवनको कसना चाहिये और तदनुसार अपना कर्तव्य निर्धारण करना चाहिये ।

भारतीय वाङ्मयमें अग्निपुराणका महत्त्व

(लेखक—श्रीबाबूरामजी द्विवेदी, एम्० ए०, बी० एड०, 'साहित्यरत्न')

संस्कृत साहित्यसे लेकर हिंदी, बंगला, मराठी, तामिल और तेलुगू आदि भारतीय वाङ्मयका वर्गीकरण सांस्कृतिक दृष्टिकोणसे दो श्रेणियोंमें किया जा सकता है—अभ्युदयप्रधान और निःश्रेयसप्रधान।

अभ्युदय=अभि—उद्+इण्+अच्—अभ्युदय। अभीष्ट-कार्याणां प्रादुर्भावे, वृद्धौ[1]—इच्छित (इहलौकिक कार्योंमें समुन्नति, भौतिक विकास)।

निःश्रेयस=निः—सम्यक् प्रकारेण, श्रेयस—अतिशयेन प्रशस्यः; प्रशस्य+ईयसुन्। प्रशस्य शब्दस्य 'श्र' आदेशः श्र+ईयसुन् (ईयस्)=श्रेयस्—मङ्गलमय, आत्मकल्याण (पारलौकिक सुख—मोक्ष)।

वैशेषिक दर्शनमें महर्षि कणादने धर्मका तात्त्विक स्वरूप बतलाते हुए कहा है कि 'जिस साधनद्वारा मनुष्य इहलौकिक सुख-सुविधाकी प्राप्ति एवं इस स्थितिका उत्तरोत्तर आदर्शोन्मुख विकास करता हुआ पारमार्थिक सुख (आत्मिक कल्याण) अथवा मोक्षकी उपलब्धि कर ले उसे ही धर्म कहते हैं।[2]

अग्निपुराणमें वेद, उपनिषद्, पुराण, सूत्र एवं इनके भाष्यात्मक सभी ग्रन्थ वाङ्मयके अन्तर्गत माने गये हैं।[3] अतः भारतीय वाङ्मय धर्ममूलक है।

'नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः,' 'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्' आदि सूक्तियोंद्वारा सिद्ध होता है कि अभ्युदय (कर्मात्मक साधन) मार्गका सम्यक् अनुसरण करनेके पश्चात् ही निःश्रेयस (ज्ञानात्मक साध्य) की प्राप्ति सम्भव है। भारतीय साहित्यमें अभ्युदय और निःश्रेयसका समुचित समन्वय प्रदर्शित करते हुए संस्कृत-साहित्याचार्य मम्मट कहते हैं—

काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये।
सद्यःपरनिर्वृत्तये कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे[4]॥

धन और यशकी प्राप्ति, व्यवहारकुशलता आदि काव्य (साहित्य) का इहलौकिक (अभ्युदयात्मक) उद्देश्य हैं। शिवेतरक्षति (शिव+इतर+क्षति) अकल्याणका नाश अर्थात् आत्मकल्याणकी प्राप्ति तथा सद्यःपरनिर्वृत्ति=शीघ्र ही परमोत्कृष्ट आनन्द (आत्मानन्द) की उपलब्धि निःश्रेयस—प्रधान उद्देश्य है।

धार्मिक क्षेत्रमें जिस प्रकार भारतीय दार्शनिक धर्म, अर्थ, काम मनुष्य-जीवनका लौकिक उद्देश्य एवं मोक्षको पारलौकिक उद्देश्य मानते हैं और इस चतुर्वर्गको मानव-जीवनका परम पुरुषार्थ बतलाते हैं, उसी प्रकार हमारे साहित्यकार भी धर्म, अर्थ, काम, मोक्षमें विचक्षणता तथा कीर्ति और प्रीतिकी प्राप्तिको साहित्यका अन्तिम उद्देश्य मानते हैं।[5]

अग्निपुराणका पौराणिक-ऐतिहासिक महत्त्व

भारतीय वाङ्मयके इतिहासमें पुराणोंकी प्राचीनता अथर्ववेदके एक मन्त्रसे सिद्ध होती है जिसका आशय यह है—उच्छिष्ट (अवशिष्ट—पूर्णमेवावशिष्ट) अर्थात् परमात्मासे ऋक्, साम, यजुष् तथा छन्दस् (अथर्व) के साथ पुराण भी उत्पन्न हुए।[6]

बृहदारण्यक उपनिषद्में वेदोंके साथ इतिहास और पुराणका उल्लेख मिलता है—'उस महत्तत्त्व (ब्रह्म) के निःश्वास (संकल्प) से ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद एवं इतिहास और पुराण उत्पन्न हुए।'[7]

'पुराण' शब्दकी व्युत्पत्तिपर ध्यान देनेसे भी इसकी प्राचीनता सिद्ध होती है—पुरा भवः (पुरा+ट्यु) वा पुरा नीयते (पुरा+नी+ड)=पुराना=पुराण।

---

१. शब्दस्तोम महानिधि पृष्ठ १०।

२. यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः। (वैशेषिकदर्शन १।१।२)

३. यतो वेदाः पुराणानि विद्योपनिषदस्तथा।
श्लोकाः सूत्राणि भाष्याणि यच्चान्यद्वाङ्मयं भवेत्॥
(अग्नि० ३७६।३०)

४. आचार्य मम्मटकृत काव्यप्रकाश।

५. धर्मार्थकाममोक्षेषु वैचक्षण्यं कलासु च।
करोति कीर्तिं प्रीतिं च साधु काव्यनिषेवणम्॥ (भामह)

६. ऋचः सामानि छन्दांसि पुराणं यजुषा सह।
उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रिताः॥
(अथर्व० ११।७।२४)

७. अस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद् यदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस इतिहासपुराणम्।
(बृहदारण्यक० २।४।११)

वैदिक वाङ्मयके ऐतिहासिक विकास-क्रमपर विचार करनेसे यह तथ्य सामने आता है कि जब वेदार्थदर्शनकी शक्तिके साथ अनादि पुराण भी लुप्त हो रहे थे, तब व्यासजीने पुराणोंका संकलन किया।[8]

देवीभागवत सांकेतिकरूपमें पुराणोंकी संख्या अठारह बताता है[9]—

मकारसे आरम्भ होनेवाले पुराण				(मार्कण्डेय तथा मत्स्य)	—दो
भकार	”	”	”	(भागवत और भविष्य)	—दो
ब्रकार	”	”	”	(ब्रह्म, ब्रह्माण्ड, ब्रह्मवैवर्त)	—तीन
वकार	”	”	”	(विष्णु, वामन, वाराह, वायु)	—चार
अकार	”	”	”	(अग्नि या आग्नेय या वह्नि)	—एक
'ना' से	”	”	”	(नारदीय या नारद)	—एक
'प' ”	”	”	”	(पद्मपुराण)	—एक
'लिङ्' ”	”	”	”	(लिङ्गपुराण)	—एक
'ग' ”	”	”	”	(गरुडपुराण)	—एक
'कू' ”	”	”	”	(कूर्मपुराण)	—एक
'स्क' ”	”	”	”	(स्कन्दपुराण)	—एक

उक्त अष्टादश पुराणोंमें अग्निपुराणका विशेष महत्त्व है—अग्नि गू अङ्ग+नि ङ् लेप=अग्निः। अङ्गति—ऊर्ध्वं गच्छति इति अग्निः—इस व्युत्पत्तिसे सिद्ध होता है कि 'अग्नि' शब्दमें प्रकाशक और विकासक तत्त्व निहित हैं। इसके बाह्य (भौतिक) स्वरूपकी उपासनासे अभ्युदय (इहलौकिक उन्नति) होता है और इसके अन्तः (अभौतिक—पारमार्थिक) स्वरूपकी उपासनाद्वारा निःश्रेयस (मोक्ष) की प्राप्ति होती है। ऋग्वेदके एक मन्त्रके अनुसार मनुष्य अग्निके बाह्य रूपकी साधनाद्वारा शरीरकी पुष्टि, सुखकारक उत्तम कीर्ति, विद्या एवं सुवर्णादि श्रेष्ठ धन (अभ्युदय) को सुगमतापूर्वक प्राप्त कर लेता है, जिन्हें शूरवीर चाहते हैं। अग्निके पारमार्थिक स्वरूप (परमेश्वर) की उपासनाद्वारा आत्म-तुष्टि (कल्याण) अथ च निःश्रेयसकी उपलब्धि कर लेता है।[10]

वैदिक तीन प्रसिद्ध देवताओंमें एक अग्नि भी है—सूर्य, वायु और अग्नि।[11] शतपथ ब्राह्मणमें अग्निको ब्रह्म और आत्मा कहा गया है।[12] इस प्रकार लौकिक और अलौकिक विशेषताओंसे युक्त अग्निपूर्वक पुराणको अग्निपुराण कहते हैं। इस दृष्टिसे इसका पौराणिक महत्त्व अक्षुण्ण है।

अग्निपुराणका ऐतिहासिक महत्त्व भी कम नहीं है। पुराण-वाङ्मयके उद्भट विद्वान् डा० हाजराने कुछ ठोस प्रामाणिक तथ्योंके आधारपर वह्निपुराणको ही मूल अग्नि-पुराण माना है। उनके मतानुसार मूल अग्निपुराण वह्नि-पुराणके नामसे प्रख्यात था, जो अग्निकी लौकिक और पार-लौकिक महिमासे युक्त था।

वह्निपुराणका रचनाकाल चौथी-पाँचवीं शताब्दीके मध्य अनुमित है। वर्तमान अग्निपुराणमें ईसाके कई शताब्दी पूर्वसे लेकर नवीं शताब्दीतकके ज्ञान-विज्ञानविषयक अनुभव उपलब्ध होते हैं; अतः इसकी रचना नवीं शताब्दीमें हुई।[13] पुराण-साहित्य-मर्मज्ञ एस० डी० ज्ञानी अग्निपुराणका विकास-क्रम सातवींसे ग्यारहवीं शताब्दीतक मानते हैं।[14]

अष्टादश पुराणोंमें अग्निपुराण, गरुडपुराण और नारदपुराणका विशेष महत्त्व है। इनका वर्णन-विस्तार अन्य पुराणोंकी अपेक्षा अधिक है। इनमें भी अग्निपुराणके अन्तर्गत कोष, व्याकरण, छन्द, अलंकार, ज्योतिष, चिकित्सा और राजनीतिशास्त्र आदि लौकिक विषयोंका प्रतिपादन होनेके कारण यह अत्यन्त लोकप्रिय हो गया।[15]

अग्निपुराणके प्रतिपाद्य (वर्ण्य) विषय निम्नाङ्कित भागोंमें विभक्त किये जा सकते हैं—

(क) भुक्ति-मुक्तिवाद

(ख) श्रेय-प्रेय-सिद्धान्त

(ग) प्रवृत्ति-निवृत्ति

(घ) शैव-सिद्धान्त

(ङ) गीता-सार-विवेचन

---

८. हिंदू-संस्कृति-अङ्क पृष्ठ ८१२।

९. मद्वयं भद्वयं चैव ब्रत्रयं वचतुष्टयम्।
अनापलिङ्गकूस्कानि पुराणानि पृथक् पृथक्॥
(देवीभागवत १।३।२१)

१०. अग्निना रयिमश्नवत् पोषमेव दिवे दिवे यशसं वीरवत्तमम्।
(ऋग्वेद १।१।३)

११. संस्कृतशब्दार्थ-कौस्तुभ पृष्ठ १०-११।

१२. ब्रह्म ह्यग्निः। (शत० १।५।१।११)
आत्मा वा अग्निः। (शत० ७।३।१।२)

१३. अग्निपुराण (भूमिका-भाग) पृष्ठ ४२।
(आचार्य बलदेव उपाध्यायद्वारा सम्पादित)

१४. अग्निपुराणः एक अध्ययन (एस० डी० ज्ञानी) पृष्ठ २८८।

१५. अग्निपुराण। भूमिका-भाग, पृष्ठ २८।

(च) काव्य-लक्षण, काव्य-रक्ष

(छ) राजनीति-शास्त्र आदि ।

अग्निपुराणका भुक्ति-मुक्तिवाद

अग्निपुराणमें भुक्ति—(भुज्+क्तिन्) सांसारिक विषयोपभोग एवं उसकी प्राप्तिके साधनोंका जितना विस्तृत वर्णन है, उतना ही मुक्ति—(मुच्+क्तिन्) बन्धनसे मुक्ति और उसके साधनोंका भी ।

भुक्ति (अभ्युदयात्मक भाव) और मुक्ति (निःश्रेयसात्मक भाव) विशिष्ट होनेके कारण अग्निपुराण अपने एक पक्ष (भुक्ति) के द्वारा मनुष्योंको बहिर्मुखी (यथार्थोन्मुखी) विचारधाराकी तुष्टि एवं पुष्टि करता है तो अपने द्वितीय पक्ष (मुक्ति) के संनिकर्षसे उनकी अन्तर्मुखी (आदर्शोन्मुखी) भावनाकी तुष्टि करता है । इस दृष्टिसे इसका सार्वकालिक और सार्वभौम महत्त्व अक्षुण्ण है ।

अग्निपुराणकी प्रस्तावनामें ही वसिष्ठजी कहते हैं कि अग्निदेवद्वारा कथित होनेके कारण वेदसम्मत यह पुराण अग्निपुराण कहलाया । पढ़ने-सुननेवालेको यह भुक्ति (सांसारिक सुख) और मुक्ति प्रदान करता है ।[१६]

अग्निपुराणके माहात्म्य-वर्णन-प्रसङ्गमें सूतजीके मतानुसार भुक्ति और मुक्तिसम्बन्धी दो प्रकारकी ब्रह्मविद्याओंसे युक्त अग्निपुराण एक ऐसा शास्त्र है जिससे बढ़कर अन्य कोई विद्या-तत्त्व नहीं है ।[१७] इस पुराणमें सब प्रकारकी विद्याएँ प्रदर्शित हैं ।[१८] इसे पढ़नेसे, इसके महत्त्वपर ध्यान देनेसे सदा शुभ होता है । भुक्ति (अभ्युदय) और मुक्ति (निःश्रेयस्) की प्राप्ति होती है ।[१९]

अग्निपुराणके कर्ता और श्रोता जनार्दन (विष्णु) हैं; अतः यह सववेदमय,[२०] सर्वविद्यामय और सर्वज्ञानमय है । पाठकों-श्रोताओंके लिये हरिरूप है ।[२१] विद्यार्थियोंके लिये यह अग्निपुराण विद्यादायक है । अर्थार्थियों (धन चाहनेवालों) के लिये धनदाता है ।[२२] लौकिक अभ्युदयकी इच्छावाले व्यक्तियोंको भुक्ति (विषयोपभोग) और पारलौकिक सुख (निःश्रेयस्) की अभिलाषा रखनेवाले मनुष्योंको मुक्ति प्रदान करता है ।[२३]

अग्निपुराणका भुक्ति-मुक्ति सिद्धान्त ऋग्वेदके स्वराज्य सूक्तसे अनुप्रेरित है । मन्त्रद्रष्टाका प्रवचन है कि दोषरहित, मननशील विद्वान् जिस बुद्धिको पाकर उसका विस्तार करते हैं, उस सभाध्यक्ष (इन्द्र) के राज्यमें पूर्वपुरुषोंके समान उत्तम धन और वचनको प्राप्त होकर स्वराज्यके पुजारी बनो ।[२४]

परंतु श्रीमद्भगवद्गीता अग्निपुराणोक्त 'भुक्ति-मुक्ति'-मेंसे केवल मुक्तिको श्रेष्ठ मानती है । भगवदाश्रय (भगवत्-शरणागति) की प्राप्ति[२५] अथवा भगवत्कृपाके फलस्वरूप परम पद (मोक्ष)—शाश्वत ब्रह्मपदकी उपलब्धि गीताका अन्तिम लक्ष्य है ।[२६]

'भुक्ति' को गीता हेय मानती है । भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—भोगैश्वर्यमें आसक्ति रखनेवाले सकामी पुरुषोंके

---

१६. अग्निनोक्तं पुराणं यदाग्नेयं ब्रह्मसम्मितम् ।
भुक्तिमुक्तिप्रदं दिव्यं पठतां शृण्वतां नृणाम् ॥
(अग्नि० १ । ५)

१७. ब्रह्मविद्याद्वयोपेतं भुक्तिदं मुक्तिदं महत् ।
नास्मात्परतरः सारो नास्मात्परतरः सुहृत् ॥
(अग्नि० ३८३ । ४७)

१८. आग्नेये हि पुराणेऽस्मिन् सर्वविद्याः प्रदर्शिताः ।
(अग्नि० ३८३ । ५१)

१९. आग्नेयं पठितं ध्यातं शुभं स्याद् भुक्तिमुक्तिदम् ।
(अग्नि० ३८३ । ३८)

२०. आग्नेयाख्यपुराणस्य कर्ता श्रोता जनार्दनः ।
तस्मात् पुराणमाग्नेयं सर्ववेदमयं महत् ॥
(अग्नि० २७१ । १७)

२१. सर्वविद्यामय पुण्यं सर्वज्ञानमयं वरम् ।
सर्वात्महरिरूपं हि पठतां शृण्वतां नृणाम् ॥
(अग्नि० २७१ । १८)

२२. विद्यार्थिनां च विद्यादमर्थिनां श्रीधनप्रदम् ।
(अग्नि० २७१ । १९)

२३. सर्वेप्सूनां सर्वदं तु मुक्तिदं मुक्तिकामिनाम् ।
(अग्नि० २७१ । २२)

२४. यामथर्वा मनुष्पिता दध्यङ् धियमत्नत ।
तस्मिन् ब्रह्माणि पूर्वथेन्द्र उक्था समग्मतार्चन्ननु स्वराज्यम् ॥
(ऋग्वेद १ । ८० । १६)

२५. सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥
(गीता १८ । ६६)

२६. मत्प्रसादादवाप्नोति शाश्वतं पदमव्ययम् ।
(गीता १८ । ५६)

अन्तःकरणमें निश्चयात्मिका बुद्धि नहीं उत्पन्न होती, जो परम कल्याण (मोक्ष) की साधिका है।[२७]

अग्निपुराणका श्रेय-प्रेय-सिद्धान्त

प्रेयस् (प्रेयः)—अतिशयेन प्रियः; प्रियः+ईयसु प्रिय-शब्दस्य प्र-आदेशः; प्र+ईयस्=प्रेयस् (प्रेयः)=लौकिक इन्द्रियजन्य सुखको प्रेय कहते हैं।

श्रेयस् (श्रेयः)—अतिशयेन प्रशस्यः; प्रशस्य+ईयसुन्; प्रशस्यशब्दस्य श्र-आदेशः=श्र+ईयस्=श्रेयस् (श्रेयः)= अतीन्द्रिय, अलौकिक सुखको श्रेय कहते हैं।

अग्निपुराणमें उक्त दोनों प्रकारके सुखोंका निर्देश भगवत्स्वरूपके निरूपणद्वारा किया गया है—'ज्ञान, शक्ति, परमैश्वर्य, वीर्य (शौर्य), तेज आदि उत्तम गुण (भग) से युक्त होनेके कारण भगवत् (भगवान्) शब्द निष्पन्न होता है।[२८]

विष्णुपुराणमें उल्लेख मिलता है कि समग्र ऐश्वर्य, धर्म, यश, सम्पत्ति, ज्ञान और वैराग्य—इन छः विशेषणोंसे विभूषित तत्त्वको भग कहते हैं। भगविशिष्ट ईश्वरको भगवान् कहते हैं।[२९]

भगवत्स्वरूपकी उक्त व्याख्यासे सिद्ध होता है कि स्वयं भगवान् भी ऐश्वर्य, शौर्य, यश, सम्पत्ति (श्रियः) आदि प्रेयात्मक (अभ्युदयप्रधान) और ज्ञान, धर्म, वैराग्य आदि—श्रेयात्मक (निःश्रेयसप्रधान) भावोंसे ओत-प्रोत हैं।

कठोपनिषद्के अन्तर्गत यमराज-नचिकेता-संवादमें प्रेय-श्रेयका सुन्दर उदाहरण मिलता है। बालक नचिकेता अपने क्रुद्ध पिताके अभिशापसे सशरीर यमलोकमें पहुँच जाता है। यमराजने उससे तीन वरदान माँगनेके लिये संकेत किया। नचिकेताने एकदम यह नहीं माँगा कि मुझे ब्रह्मज्ञान (श्रेय या निःश्रेयसप्रधान सुख)-प्राप्तिके लिये उपदेश दीजिये। किंतु उसने प्रथम वरदान यह माँगा कि मेरे पिता मुझपर अप्रसन्न हैं, वे प्रसन्न हो जायँ।[३०] दूसरा वरदान यह माँगा कि अग्नि-विज्ञान (ऐहिक समृद्धिसाधक यज्ञादि कर्म) के साधनके लिये उपदेश दीजिये।[३१] दोनों वरदान प्राप्त कर चुकनेके पश्चात् नचिकेताने यह माँगा कि अब मुझे आत्मविद्या (निःश्रेयस्) अथच आत्यन्तिक सुखकी प्राप्तिका उपदेश दीजिये। यही मेरा तीसरा वरदान है।[३२]

यमराजने कहा कि तीसरे वरदानके बदले मैं तुम्हें अधिक ऐश्वर्य (सम्पत्ति) देता हूँ; परंतु नचिकेताने प्रेय (इहलौकिक सुख) की प्राप्ति-हेतु यज्ञादि कर्मोंका रहस्य जान लेनेके पश्चात् श्रेय (आत्मकल्याण) की उपलब्धिके लिये ब्रह्मविद्याकी याञ्चा की।

कठोपनिषद्में प्रेय—इन्द्रियोंको प्रिय लगनेवाले सांसारिक सुख तथा श्रेय—आत्मज्ञानविषयक सुखका अन्तर इस प्रकार बतलाया गया है—

'जब प्रेय (तात्कालिक—बाह्य इन्द्रियजन्य सुख) और श्रेय (सच्चा त्रिरकालिक आत्मसुख)—ये दोनों मनुष्यके सम्मुख उपस्थित होते हैं, तब बुद्धिमान् पुरुष प्रेयकी अपेक्षा श्रेयको महत्त्व देता है; परंतु मन्द बुद्धिवाला व्यक्ति श्रेयकी अपेक्षा प्रेयको ही अच्छा मानता है।[३३] अग्निपुराणके 'यमगीता'-प्रसङ्गमें यमराज कहते हैं—'सदा प्रेय (सांसारिक सुख-प्राप्ति) की साधना करते हुए आत्माव-

---

२७. भोगैश्वर्यप्रसक्तानां तयापहृतचेतसाम्।
व्यवसायात्मिका बुद्धिः समाधौ न विधीयते॥
(गीता २। ४४)

२८. ज्ञानशक्तिः परैश्वर्यं वीर्यं तेजांस्यशेषतः।
भगवच्छब्दवाच्यानि विना हेयैर्गुणादिभिः॥
(अग्निपुराण ३७९। १४)

२९. ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः।
ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरिणा॥
(विष्णुपुराण ६। ५। ७४)

३०. शान्तसंकल्पः सुमना यथा स्याद्वीतमन्युर्गौतमो माभि मृत्यो।
त्वत्प्रसृष्टं माभिवदेत्प्रतीत एतत्त्रयाणां प्रथमं वरं वृणे॥
(कठ० १। १। १०)

३१. स त्वमग्निं स्वर्ग्यमध्येषि मृत्यो।
प्रब्रूहि त्वं श्रद्दधानाय मह्यम्॥
(कठ० १। १। १३)

३२. येयं प्रेते विचिकित्सा मनुष्येऽस्तीत्येके नायमस्तीति चैके।
एतद्विद्यामनुशिष्टस्त्वयाहं वराणामेष वरस्तृतीयः॥
(कठ० १। १। २०)

३३. श्रेयश्च प्रेयश्च मनुष्यमेतस्तौ सम्परीत्य विविनक्ति धीरः।
श्रेयो हि धीरोऽभि प्रेयसो वृणीते प्रेयो मन्दो योगक्षेमाद्वृणीते॥
(कठ० १। २। २)

लोकन—पारमार्थिक सुख (श्रेय) की ओर उन्मुख रहना ही मानवका परम पुरुषार्थ है।[३४]

अग्निपुराणका प्रवृत्ति-निवृत्ति-सिद्धान्त

प्रवृत्ति—(प्र—वृत्+क्तिन्) अविच्छिन्न उन्नति, सांसारिक विषयोंमें अभ्युदात्मक अनुरक्ति।

निवृत्ति—(नि—वृत्+क्तिन्) सांसारिक प्रपञ्चोंसे उपराम (विरक्त) होनेकी भावना।

गीतामें कर्मयोगियोंके प्रवृत्तिमार्गके साथ ही यतियोंका निवृत्तिमार्ग भी बतलाया गया है। लोकमान्य बाल गंगाधर तिलकने भागवतकारका दृष्टिकोण स्पष्ट करते हुए कहा है कि गीतामें भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनको लक्ष्य करके जो उपदेश दिया है, वह विशेषतया मनु-इक्ष्वाकु इत्यादि परम्परानुमोदित प्रवृत्ति-विषयक भागवतधर्मका ही है और उसमें निवृत्ति-विषयक यतिधर्मका जो निरूपण पाया जाता है, वह केवल आनुषङ्गिक है।[३५]

महाभारतमें स्पष्ट उल्लेख है—'नारायणीयधर्म प्रवृत्ति-मार्गका होकर भी पुनर्जन्मको टालनेवाला अर्थात् पूर्ण मोक्षका दाता है।'[३६] निवृत्त्यात्मक नैष्कर्म्यावस्थाकी प्राप्ति प्रवृत्त्यात्मक कर्मके बिना असम्भव है;[३७] इसीलिये भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा है कि नियत (शास्त्रविहित) कर्मोंका पालन करो; क्योंकि कर्म न करने (निवृत्ति) की अपेक्षा कर्म करना (प्रवृत्ति) श्रेष्ठ है। बिना कर्मके शरीरका निर्वाह भी नहीं हो सकता।[३८]

अग्निपुराणके माहात्म्य-प्रसङ्गमें स्वयं अग्निदेवने कहा है कि प्रवृत्तिधर्ममूलक और निवृत्तिधर्ममूलक दो प्रकारकी विद्याओंसे युक्त होनेके कारण यह अग्निपुराण सम्पूर्ण शास्त्रोंमें श्रेष्ठ है।[३९]

अग्निपुराणका शैव-सिद्धान्त

अग्निपुराणमें शिव-स्तुतिकी प्रधानता है। स्कन्दपुराणमें कहा गया है कि अष्टादश पुराणोंमेंसे दसमें शिवकी स्तुति है, चारमें ब्रह्माकी और दोमें देवी तथा हरि (विष्णु) की स्तुति है।[४०] पद्मपुराणमें समस्त पुराणोंका वर्गीकरण करते हुए मत्स्य, कूर्म, लिङ्ग, शिव, स्कन्द और अग्निपुराणको शिवस्तुति-प्रधान अथच तामस कहा गया है।[४१] 'विष्णु-उपासना-प्रधान' पुराण 'विष्णु,' 'नारदीय', 'भागवत', 'गरुड', 'पद्म' और 'वाराह' सात्त्विक हैं। ब्रह्मोपासना-विषयक ब्रह्माण्ड, ब्रह्मवैवर्त, मार्कण्डेय, भविष्य, वामन तथा ब्राह्म पुराण राजस हैं।[४२]

शिव-पार्वती-संवाद-सम्बन्धी एक प्राचीन उपाख्यानके अनुसार भगवान् शंकर पार्वतीको तत्त्वज्ञानका उपदेश देते हुए कहते हैं—'हेदेवी ! प्राणिमात्रके हितार्थ विशेषतया कलियुगके जीवोंके लिये वेद-शास्त्र (निगमों) के समान ही मैंने आगम-शास्त्रकी रचना पहलेसे ही कर दी है, जिसमें वेदोंका ही सार है, किंतु इसमें यह विशेषता है कि जहाँ वैदिकमार्गद्वारा मोक्षार्थीको लौकिक विषयभोगोंका त्याग करना पड़ता है, वहाँ इस आगम-शास्त्रके अनुयायीके लिये इस शास्त्रमें प्रेय (भोग)

---

३४. भोगेषु शक्तिः सततं तथैवात्मावलोकनम्।
श्रेयः परं मनुष्याणां कपिलोद्गीतमेव हि॥
(अग्निपु० ३८२। ३)

३५. श्रीमद्भगवद्गीतारहस्य अथवा कर्मयोगशास्त्र, पृष्ठ १०।

३६. नारायणपरो धर्मः पुनरावृत्तिदुर्लभः।
प्रवृत्तिलक्षणश्चैव धर्मो नारायणात्मकः॥
(महाभारत शां० ३४७। ८१)

३७. न कर्मणामनारम्भान्नैष्कर्म्यं पुरुषोऽश्नुते।
(गीता ३। ४)

३८. नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः।
शरीरयात्रापि च ते न प्रसिद्ध्येदकर्मणः॥
(गीता ३। ८)

३९. प्रवृत्तं च निवृत्तं च धर्मं विद्याद् द्वयात्मकम्।
आग्नेयस्य पुराणस्य शास्त्रस्यास्य समं न हि॥
(अग्निपु० ३८३। १९)

४०. अष्टादशपुराणेषु दशभिर्गीयते शिवः।
चतुर्भिर्भगवान् ब्रह्मा द्वाभ्यां देवी तथा हरिः॥
(स्कन्दपुराण)

४१. मात्स्यं कौर्मं तथा लैङ्गं शैवं स्कान्दं तथैव च।
आग्नेयं च षडेतानि तामसानि निबोध मे॥
(पद्म० उ० ख० २६३। ८१)

४२. वैष्णवं नारदीयं च तथा भागवतं शुभम्।
गारुडं च तथा पाद्मं वाराहं शुभदर्शने।
सात्त्विकानि पुराणानि विज्ञेयानि शुभानि वै॥
ब्रह्माण्डं ब्रह्मवैवर्तं मार्कण्डेयं तथैव च।
भविष्यं वामनं ब्राह्मं राजसानि निबोध मे॥
(पद्म० उ० ख० २६३। ८२-८४)

और श्रेय (मोक्ष) दोनोंको साथ-साथ प्राप्त करनेका सुगम मार्ग बतलाया गया है।[४३]

जगज्जननी माता पार्वती अथच श्रीसुन्दरी देवीका परम भक्त कहता है कि जहाँ भोग है, वहाँ मोक्ष नहीं और जहाँ मोक्ष है, वहाँ भोग नहीं; परंतु श्रीसुन्दरी देवीकी सेवाके फलस्वरूप भोग और मोक्ष—दोनों एक साथ प्राप्त होते हैं।[४४]

शैवागम या आगम-शास्त्रके, जिसे मन्त्रशास्त्र अथवा शक्तिशास्त्र भी कहते हैं, उक्त उदाहरणसे यह निष्कर्ष निकलता है कि अग्निपुराणका भुक्ति-मुक्तिवाद तथा श्रेय और प्रेय-सिद्धान्त आगम-शास्त्रसे प्रभावित है, अतः इसमें शिव-स्तुतिकी प्रधानता स्वाभाविक है।

अग्निपुराणका गीता-सार-विवेचन

अग्निपुराणके ३८१वें अध्यायमें अग्निदेवद्वारा गीता-सार कथित है। गीता-ज्ञानका विवेचन करते हुए अग्निदेव कहते हैं—मैं सब प्रकारके गीता-ज्ञानसे उत्तम गीताका सार वर्णन करता हूँ, जो भुक्ति और मुक्तिको देनेवाला है; जिसे भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनको सुनाया था।[४५]

अग्निपुराणके अन्तर्गत केवल अट्ठावन श्लोकोंमें गीताके अठारह अध्यायोंका सार वर्णित है। गीतोक्त निष्काम कर्मयोगका स्पर्श मात्र भी अग्निपुराणमें नहीं है, अतएव दोनों शास्त्रोंके दृष्टिकोणमें महान् अन्तर है।

उदाहरणार्थ—गीतामें भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं कि 'ॐ-तत्-सत्' यह तीन प्रकारका ब्रह्म-नाम है, उसीसे सृष्टिके आदि कालमें ब्राह्मण, वेद तथा यज्ञादि रचे गये।[४६] अग्निपुराणमें भगवान् कहते हैं—ॐ, तत्, सत्—यह तीन ब्रह्मका नाम है, यज्ञ, दान आदि कर्म मनुष्योंके लिये भुक्ति और मुक्तिकी प्राप्तिके साधन हैं।[४७]

अग्निपुराणका काव्यपक्ष

अग्निपुराणका काव्य-लक्षण संस्कृत साहित्यके पूर्ववर्ती आचार्य उद्भट भामह और दण्डीकी विचारधारासे अनुप्रेरित है, जो काव्यकी आत्मा रस न मानकर अलंकार मानते थे। अग्निपुराणके ३३७वें अध्यायमें अग्निदेवने काव्यका लक्षण बतलाते हुए कहा है कि 'काव्यकी शोभा बढ़ानेवाले धर्म (साधन) को अलंकार कहते हैं।'[४८] दण्डीकृत 'काव्यादर्श' में यह लक्षण अक्षरशः मिलता है।[४९]

भामहने अपने 'काव्यालंकार'में काव्यका लक्षण यह बतलाया है—शब्द और अर्थसे युक्त काव्य गद्यात्मक और पद्यात्मक दो प्रकार होता है।[५०] अग्निपुराणमें काव्यके तीन भेद निर्दिष्ट हैं—गद्य, पद्य और मिश्र।[५१] अग्निपुराणका काव्यपक्ष अग्निदेवकी निम्नोक्तिद्वारा अत्यन्त मुखरित हो गया है—

अपारे काव्यसंसारे कविरेव प्रजापतिः।
यथा वै रोचते विश्वं तथेदं परिवर्त्तते॥[५२]

अग्निपुराणमें राजनीति

अग्निपुराणका राजनीतिक दृष्टिकोण कौटिल्यके 'अर्थशास्त्र' से प्रभावित है। चाणक्य (कौटिल्य) ने राज्यके सात तत्त्व (अङ्ग) माने हैं—१—स्वामी, २—अमात्य, ३—राष्ट्र, ४—दुर्ग, ५—कोष, ६—बल (सेना), ७—सुहृद् (मित्र)।

४३. उपासना-अङ्क (कल्याण), पृष्ठ ३८५।

४४. यत्रास्ति भोगो नहि तत्र मोक्षो
यत्रास्ति मोक्षो नहि तत्र भोगः।
श्रीसुन्दरीसेवनतत्पराणां
भोगश्च मोक्षश्च करस्थ एव॥
(आगम-शास्त्र)

४५. गीतासारं प्रवक्ष्यामि सर्वगीतोत्तमोत्तमम्।
कृष्णोऽर्जुनाय यमाह पुरा वै भुक्तिमुक्तिदम्॥
(अग्नि० ३८१। १)

४६. ॐतत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः।
ब्राह्मणास्तेन वेदाश्च यज्ञाश्च विहिताः पुरा॥
(गीता १७। २३)

४७. ॐतत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः।
यज्ञदानादिकं कर्म भुक्तिमुक्तिप्रदं नृणाम्॥
(अग्निपुराण ३८१। ४८)

४८. काव्यशोभाकरान् धर्मानलंकारान् प्रचक्षते।
(अग्निपुराण ३४२। १७)

४९. दण्डीकृत 'काव्यादर्श' २। १

५०. शब्दार्थौ सहितौ काव्यं गद्यं पद्यं च तद्द्विधा।
(काव्यालंकार १। १६)

५१. गद्यं पद्यं च मिश्रं च काव्यादि त्रिविधं स्मृतम्।
(अग्निपुराण ३३७। ८)

५२. अग्निपुराण, अध्याय ३३९, श्लोक-संख्या १०।

अग्निपुराणके 'राजधर्म'-प्रसङ्गमें श्रीरामने कहा है— 'आपसमें एक दूसरेके सहयोगी (उपकारी) स्वामी, अमात्य (मन्त्री), राष्ट्र, दुर्ग, कोष, सेना और मित्र— ये सातों राज्यके सात अङ्ग हैं।'[५३]

अग्निपुराणकी विशेषता

(लेखक—श्रीमूलनारायणजी मालवीय)

पुराणोंके सम्बन्धमें सदासे विद्वानोंका यह मत रहा है कि इनका पठन, पाठन और मनन मानवोंके लिये हर दृष्टिसे लाभकारी सिद्ध हुआ है। जितने भी पुराण हैं, वह सभी अगाध ज्ञानके भण्डार हैं। इनके द्वारा आध्यात्मिक लाभ तो होता ही है, साथ ही स्वस्थ और सुखमय जीवन व्यतीत करनेको अच्छा अवसर मिलता है। जिस समय महामना मालवीयजी और महात्मा गांधीका अन्तिम मिलन हुआ था, उस काल महात्माजीने महामनाजीको सम्बोधित कर कहा था कि 'आप ज्ञानके भंडार हैं।' इसका केवल कारण यह है कि महामनाजी पुराणोंका अध्ययन तथा अनुशीलन निरन्तर किया करते थे। इसीलिये आप पूर्ण पण्डित माने जाते थे। मुझे इसके कहनेमें संकोच नहीं कि जितने भी भारतीय धुरंधर विद्वान् हुए और हैं, वे सब-के-सब पुराणोंके बलपर ही अपनी विद्याका विकास कर सके हैं। पुराणोंकी प्राचीनताके सम्बन्धमें मत्स्यपुराणके ५३वें अध्यायका निम्नलिखित श्लोक इस प्रकारसे मिला है कि—

पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम्।
अनन्तरं च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिर्गताः॥

मैं यहाँपर बतला देना चाहता हूँ कि केवल भारतीय ही नहीं, दूसरे धर्मवाले विदेशियोंने यहाँके धार्मिक ग्रन्थोंकी भूरि-भूरि प्रशंसा की है। ईसाके २९५ वर्ष पहले सम्राट् सिल्यूकस प्रथमने अपने एक दूत मेगस्थनीज़को पाटलिपुत्र अर्थात् पटनामें महाराज चन्द्रगुप्तके पास भेजा था। इसने अपनी यात्राका बहुत कुछ वर्णन पुराणोंके आधारपर ही किया था। मुझे एक 'अल्बेरुनीका भारत' नामी पुस्तक देखनेको मिली। इस पुस्तकका लेखक अल्बेरुनी गजनीका रहनेवाला अरबीका महान् विद्वान् था। इसकी उपर्युक्त पुस्तकका अनुवाद ४ अगस्त सन् १८८८में बर्लिनमें बैठकर एडवर्ड सचीने किया था। इसने लिखा है कि अल्बेरुनी पहला मुसल्मान था, जिसने पुराणोंका अध्ययन किया और इसके आधारपर भारतीय साहित्य, आचार, विचार, व्यवहार इत्यादिपर प्रकाश डाला। अल्बेरुनीने अपनी पुस्तकको ५८वर्षकी अवस्थामें लिखा था और इनकी मृत्यु सन् १०४८ ई०में हुई थी। इस विद्वान् मुसल्मानने भारतमें तेरह वर्ष रहकर बहुत-सी हिंदूधर्म-सम्बन्धी पुस्तकें लिखी थीं। इनके चार सौ वर्ष पहले ह्वेनसांग नामक चीनी यात्रीने भी भारतीय ग्रन्थोंकी प्रशंसा की है। यूरोपदेशके विद्वान् मैक्समूलरने 'इंडिया ह्वाट कैन इट टीच अस्' अर्थात् 'हम भारतसे क्या सीखें' नामी पुस्तकमें लिखा है कि 'भारतके लोगोंमें संस्कृतका प्रचार तथा संस्कृत ग्रन्थोंकी बाहुल्यता यह सिद्ध करती है कि संस्कृत मृतभाषा नहीं है। यहाँके मन्दिरोंमें रामायण, महाभारत और पुराणोंका नियमित पाठ होता रहता है और करोड़ों मन्दिरोंके दर्शनार्थी इससे लाभ उठाते हैं। ग्रामोंमें कथावाचकोंकी कथा सुननेके लिये श्रोताओंकी भीड़ लग जाती है और लोग कथा सुनकर आनन्दित हो जाते हैं। इंग्लैंडमें एंग्लो-सेक्स ग्रन्थोंकी और इटलीमें लैटिन ग्रन्थोंकी दशा इस प्रकारकी कदापि नहीं है।'

टाड साहबकृत 'टाड राजस्थान'में लिखा है कि 'मध्य और पश्चिमी भारतकी वीर राजपूत जातियोंका इतिहास मैंने हिंदुओंके पौराणिक ग्रन्थोंसे प्राप्त किया। पुराणोंमें इस देशके ऐतिहासिक और भौगोलिक वर्णन पाये जाते हैं। इस प्रकारकी सामग्री जुटानेमें श्रीमद्भागवत, स्कन्द, भविष्य और अग्निपुराण अधिक सहायक हुए हैं। अग्निपुराणमें स्थावर और जंगम सभीपर लिखा गया है। श्रीनारद, विष्णुमहापुराणमें इसकी अनुक्रमणिका जहाँ दी गयी है, कोई ऐसा महत्त्वपूर्ण विषय नहीं है, जो इसमें न हो। इसीसे सूतजीका कहना है कि—

आग्नेये हि पुराणेऽस्मिन् सर्वविद्याः प्रदर्शिताः।

(अग्निपुराण ३८२। ५१)

किंतु इसमें जो श्लोक-संख्या दी गयी है, वह केवल पंद्रह

५३. स्वाम्यमात्यं च राष्ट्रं च दुर्गं कोषो बलं सुहृत्। परस्परोपकारीदं सप्ताङ्गं राज्यमुच्यते॥

(अग्निपुराण २३९। १)

हजार लिखी है; परंतु श्रीमद्भागवतमें "×××वाह्नं च दश-पञ्चचतुःशतम्' अर्थात् अग्निपुराणकी श्लोक-संख्या पंद्रह हजार चार सौ श्लोकोंकी निर्धारित की गयी है। इसी प्रकार ब्रह्मवैवर्तपुराणमें भी माना गया है।

भवन-निर्माण, मूर्तिकला इत्यादिपर 'भारतीय स्थापत्य' अर्थात् स्थापत्यशास्त्र नामक ग्रन्थ डा० द्विजेन्द्रनाथ शुक्लद्वारा सम्पादित मुझे देखनेको मिला। जिसमें विद्वान् लेखकने लिखा है कि 'अग्निपुराणमें वास्तुविद्याका बड़ा ही विस्तृत विवेचन है, जैसा कि अन्य पुराणोंमें अप्राप्त है। इसमें वास्तु विद्यापर सोलह अध्यायोंमें प्रायः सभी अङ्गोंपर प्रकाश डाला गया है। इस पुराणमें पाषाण-कला (मूर्ति-निर्माण) की प्रधानता है। वास्तु-कलापर केवल तीन तथा मूर्ति-निर्माणपर तेरह अध्याय हैं। डा० आचार्यके मतमें अग्निपुराणका पुरनिवेश (अध्याय १०६) वास्तु-शास्त्रीय एक विशिष्ट देन है।'

अग्निपुराणका काव्यशास्त्रीय भाग वा० रामलाल वर्मा शास्त्रीद्वारा सम्पादित हुआ है और मथुराके गोलोकवासी वैद्य नटवरलालजी चतुर्वेदीने अग्निपुराणसे लेकर गवायुर्वेदनामी एक छोटी-सी पुस्तिका प्रकाशित की थी, जो मुझे मिली। इसमें गो-महिमा और गो-चिकित्सापर कुछ प्रयोग लिखे हुए हैं, जिसमें सींग, कर्ण, दाँत, जिह्वा, गलग्रह, वस्तिशूल, वातरोग, क्षय, अतिसार, कोष्ठरोग, शाखारोग, कास-श्वास तथा वत्सचिकित्सा इत्यादिपर काष्ठ ओषधियोंके सुलभ और लाभकारी प्रयोग आये हैं। मानवोंकी तथा गज-चिकित्सा और अश्वचिकित्साका वर्णन भी बड़ी सुन्दरताके साथ किया गया है। लिखा भी है कि—

शालिहोत्रः सुश्रुताय हयायुर्वेदमुक्तवान्।
पालकाप्योऽङ्गराजाय गजायुर्वेदमब्रवीत्॥

हम यहाँपर यह लिखना भी आवश्यक समझते हैं कि सन् १९१७ की गो-महासभाके जन्मदाता और सभापति कलकत्ता हाईकोर्टके भूतपूर्व जज सर जान उडरफ साहब तन्त्रशास्त्रके ज्ञाता थे और गौ-जातिकी रक्षाके हामी रहे। आपपर अग्निपुराणका बहुत कुछ प्रभाव पड़ा था। मुझे तो इस पुराणके नीचे लिखे हुए गो-सम्बन्धी शब्द बहुत रुचिकर प्रतीत होते हैं—

सर्वेषामेव भूतानां गावः शरणमुत्तमम्।

रामचरितमानसमें पिता-पुत्र-सम्बन्ध

(लेखक—डॉ० श्रीरामकुमारजी पाठक, एम्० ए०, पी-एच्० डी०)

प्रातःस्मरणीय गोस्वामी तुलसीदासजीकी लेखनीसे प्रसूत रामचरितमानस पारिवारिक महाकाव्य है, जिसके सभी पात्र सम्मिलित परिवारके सदस्य हैं। भारतीय संस्कृति संयुक्त परिवारका समर्थन करती है, इसके विरुद्ध पाश्चात्य संस्कृति एकाकी परिवारका। गोस्वामीजीने भारतीय संस्कृतिकी पूर्व-परम्पराका अनुकरण करते हुए इसी संयुक्त परिवारकी प्रणालीका समर्थन किया है। इसके लिये उन्होंने भगवान् रामके आदर्श परिवारको जनताके समक्ष प्रस्तुत किया है। वस्तुतः पारिवारिक जीवनके विविध पहलुओंका जितना विशद एवं सूक्ष्म चित्रण उन्होंने मानसमें किया है, उतना हिंदी साहित्यके किसी अन्य ग्रन्थमें नहीं मिलता। पिता-पुत्र, माता-पुत्र, पति-पत्नी, सास-बहू, भाई-भाई, सेव्य-सेवक आदिके बीच क्या सम्बन्ध होने चाहिये—इसका चित्रण रामचरितमानसमें अति सुन्दर रूपमें किया गया है।

गोस्वामीजीने रामचरितमानसके नायक श्रीरामका चित्रण केवल 'ब्रह्म' और 'विष्णु' रूपमें ही नहीं किया, वरं इसके साथ रामके आदर्श लौकिक रूपका उन्होंने विस्तृत चित्रण किया है। वस्तुतः मानसमें उनका यही रूप प्रधान है। रामका आदर्श चरित्र ही उनको ब्रह्मकी संज्ञा तक पहुँचा देता है। अपने इसी आदर्शके चरमोत्कर्षके कारण श्रीरामको मर्यादापुरुषोत्तमकी संज्ञासे विभूषित किया जाता है। अपने लौकिकरूपमें राम आदर्श पुत्र, बन्धु, पति, शिष्य, मित्र, राजा आदिके रूपमें मानसके रंगमञ्चपर उपस्थित हुए हैं। यहाँ हम मानसमें वर्णित पिता-पुत्र-सम्बन्धी आदर्शोंका विवेचन करेंगे।

भारतीय परिवारमें पिताका सर्वोच्च स्थान है। वह परिवारका भरण, पोषण तथा रक्षण करनेवाला होता है। पिता शब्द रक्षणार्थक 'पा' धातुसे बना है—'पाति रक्षत्यपरयं यः स पिता' अर्थात् जो संतानकी रक्षा करता है वह पिता है। तथा जो पुन् नामक नरकसे पिताकी रक्षा करता है वह पुत्र कहलाता है—

यच्च पुत्रं पुन्नामनरकमनेकशततारं तस्मात्पाति तत्पुत्रस्य पुत्रत्वम् ।

वाल्मीकिरामायणमें माता-पिताके महत्त्वको बताते हुए राम सीतासे कहते हैं कि देवता प्रत्यक्ष नहीं हैं, उनकी आराधनासे सदा सफलताकी सम्भावना नहीं है । माता-पिता प्रत्यक्ष हैं, वे गुरु हैं । उनकी आज्ञाका उल्लङ्घन करके देवाराधन कैसे उचित होगा, अर्थात् माता-पिताकी आज्ञा सर्वथा माननीय है—

अस्वाधीनं कथं दैवं प्रकारैरभिराध्यते ।
स्वाधीनं समतिक्रम्य मातरं पितरं गुरुम् ॥

रामचरितमानसमें राजा दशरथ आदर्श पिताके रूपमें चित्रित किये गये हैं तो राम आदर्श पुत्रके रूपमें । जिस समय विश्वामित्र मखरक्षा-हेतु राम-लक्ष्मणको माँगनेके लिये राजा दशरथके पास आते हैं, उस समय दशरथका पुत्र-विषयक प्रेम स्पष्ट हो जाता है । वे प्राण देनेको तैयार हो जाते हैं, किंतु रामको देते नहीं बनता—

सुनि राजा अति अप्रिय बानी ।
　　हृदय कंप मुख दुति कुमुलानी ॥
चौथेपन पायउँ सुत चारी ।
　　बिप्र बचन नहिं कहेहु बिचारी ॥
मागहु भूमि धेनु धन कोसा ।
　　सर्बस देउँ आजु सहरोसा ॥
देह प्रान तें प्रिय कछु नाहीं ।
　　सोउ मुनि देउँ निमिष एक माहीं ॥
सब सुत प्रिय मोहि प्रान कि नाईं ।
　　राम देत नहिं बनइ गोसाईं ॥

राम-लक्ष्मणको देते समय दशरथ विश्वामित्रसे स्पष्ट कह देते हैं कि ये पुत्र मेरे प्राण हैं, आप पिता रूपमें इनकी रक्षा करते रहिये—

मेरे प्रान नाथ सुत दोऊ ।
　　तुम्ह मुनि पिता आन नहिं कोऊ ॥

परिणामतः जनकपुरमें राम-लक्ष्मणको देखकर दशरथजीको इतना सुख हुआ, मानो मरे हुए शरीरको प्राणोंसे भेंट हुई हो—

सुत हिय लाइ दुसह दुख मेटे ।
　　मृतक सरीर प्रान जनु भेंटे ॥

दशरथजीको रामसे असीम प्रेम है; किंतु अन्य पुत्र भी उनको कम प्रिय नहीं हैं । उदाहरणार्थ राम और भरतमें उनकी दृष्टिमें कोई अन्तर नहीं । दोनों उनके दो नेत्र हैं—

मोरे भरत राम दुइ आँखी ।
　　सत्य कहउँ करि संकरु साखी ॥

वे राम-जैसे सदाचारी और सुशील पुत्रको वनवास देना सर्वथा अन्याय समझते हैं । अतः वे कैकयीसे स्पष्ट कह देते हैं कि मेरा जीवन रामके विना नहीं रह सकता—

कहउँ सुभाउ न छलु मन माहीं ।
　　जीवनु मोर राम बिनु नाहीं ॥

वे रामके वियोगमें ऐसे हो जाते हैं, जैसे अमृतरहित चन्द्रमा हो जाता है तथा रामके विना जीवनकी आशाको धिक्कार देने लगते हैं—

राम रहित धिग जीवन आसा ।

अन्तमें 'राम-राम' कहकर रघुवरके वियोगमें शरीरको छोड़कर वे सुरलोक सिधार गये । इस प्रकार दशरथजीने पुत्रके वियोगमें अपने प्राणोंको त्याग दिया ।

रामचरितमानसमें जिस प्रकार दशरथजीको आदर्श पिताके रूपमें चित्रित किया गया है, उसी प्रकार रामको आदर्श पुत्रके रूपमें । रामकी मान्यता है कि पृथ्वीपर उसीका जन्म धन्य है, जिसके चरित्र सुनकर पिताको अति आनन्द होता है तथा चारों पदार्थ उस व्यक्तिकी हथेलीमें होते हैं, जिसे माता-पिता प्राणके समान प्रिय होते हैं—

धन्य जनमु जगतीतल तासू । पितहि प्रमोदु चरित सुनि जासू ॥
चारि पदारथ करतल ताकें । प्रिय पितु मातु प्रान सम जाकें ॥

रामके चरित्रमें शैशवकालसे माता-पिताके चरणोंमें भक्ति दिखायी देती है । वे प्रातःकाल उठकर माता-पिता और गुरुको प्रणाम करते हैं और उनकी आज्ञाके अनुसार नगरका कार्य करते हैं । उनके सुन्दर चरित्रोंको देखकर दशरथ प्रसन्न होते हैं । यथा—

प्रातकाल उठि कै रघुनाथा । मातु पिता गुरु नावहिं माथा ॥
आयसु मागि करहिं पुर काजा । देखि चरित हरषइ मन राजा ॥

रामका व्यक्तित्व समुद्रके समान गम्भीर है और हिमालयके समान दृढ़ है । यही कारण है कि जब कैकेयी

उनको वनवासकी आज्ञा सुनाती है तो उनके हृदयमें दशरथ तथा कैकेयी—किसीके प्रति क्षोभ तथा क्रोध उत्पन्न नहीं होता वरं वे मनमें मुस्कराते हैं; क्योंकि वे स्वभावतः आनन्दके निधान हैं—

मन मुसकाइ भानुकुल भानू। रामु सहज आनंद निधानू॥

इतना ही नहीं, वे उसी समय यह सिद्धान्त भी स्थापित कर देते हैं कि वही पुत्र बड़ा भाग्यशाली है जो माता-पिताके वचनोंमें अनुराग रखता है। माता-पिताको संतुष्ट करनेवाला भाग्यशाली पुत्र संसारमें दुर्लभ है—

सुनु जननी सोइ सुत बड़ भागी।
जो पितु मातु बचन अनुरागी॥
तनय मातु पितु तोषनि हारा।
दुर्लभ जननि सकल संसारा॥

रामका यह लोकानुकरणीय रूप वाल्मीकिरामायणमें भी बहुत ही प्रभावपूर्ण ढंगसे अभिव्यक्त हुआ है। वस्तुतः रामके लिये पिताकी सेवा-शुश्रूषा तथा उनके आज्ञा-पालनसे बढ़कर कोई अन्य धर्म नहीं है, जैसा कि वे स्वयं कहते हैं—

न ह्यतो धर्मचरणं किंचिदस्ति महत्तरम्।
यथा पितरि शुश्रूषा तस्य वा वचनक्रिया॥
(वाल्मीकि०, अयोध्या० १९। २२)

अस्तु, वन जाते समय राम दोनों हाथ जोड़कर बार-बार सबसे अति कोमल वाणीमें कहते हैं कि वही मेरा सब प्रकारसे हितैषी है जो पिताजी (भुआल) को सुखी रक्खेगा—

बारहिं बार जोरि जुग पानी।
कहत रामु सब सन मृदु बानी॥
सोइ सब भाँति मोर हितकारी।
जेहि ते रहैं भुआल सुखारी॥

उद्धृत पंक्तियोंसे स्पष्ट है कि राम अपने पिताके सुखका कितना ध्यान रखते थे। जब सुमन्त्र राम, लक्ष्मण और सीताको वन पहुँचाकर लौटने लगते हैं, उस समय भी राम उनसे कहते हैं, हे तात! मैं हाथ जोड़कर आपसे विनय करता हूँ कि सब प्रकारसे आपका वही कर्तव्य है, जिससे पिता हमारे शोकसे दुखी न हों—

सब बिधि सो करतब्य तुम्हारे।
दुख न पाव पितु सोच हमारे॥

न केवल राम वरं दशरथके अन्य पुत्र भी आदर्श पुत्रकी कोटिमें आते हैं। जब भरत ननिहालसे आकर कैकेयीके द्वारा पिताके स्वर्गवासका समाचार सुनते हैं, तो उनकी छातीपर वज्र-सा टूट पड़ता है। 'तात, तात' कहकर वे पृथ्वीपर गिर पड़ते हैं—

तात तात हा तात पुकारी। परे भूमि तल ब्याकुल भारी॥

अन्ततोगत्वा हम इसी निष्कर्षपर पहुँचते हैं कि रामचरितमानसमें पिता-पुत्र-सम्बन्धका एक अतीव आदर्श एवं उदात्त स्वरूप गोस्वामीजीने जनताके समक्ष प्रस्तुत किया है। 'प्रान जाइ पर बचन न जाई'—जैसा सिद्धान्त रखनेवाले दशरथने पुत्रके वियोगमें अपने प्राण त्याग दिये। इससे बड़ा पिताका क्या आदर्श हो सकता है और राम भी पिताकी आज्ञासे सहर्ष चौदह वर्षका वनवास स्वीकार कर लेते हैं, इससे बड़ा पुत्रका क्या आदर्श होगा? रामका अनुकरण कर माता-पिताके चरणोंमें भक्ति रखना प्रत्येक मानवका धर्म है। इसीसे लोक और परलोक—दोनों बन सकते हैं—

अनुचित उचित बिचारु तजि जे पालहिं पितु बैन।
ते भाजन सुख सुजसु के बसहिं अमरपति ऐन॥

सावधान

इन्द्रियके प्रत्येक विषयमें राग-द्वेष वर्तमान हैं, वे शत्रु हैं, अतः उनके वशमें मत होओ।
भोगकामना सारे पापों तथा दुःखोंकी जड़ है, अतः उससे सदा बचते रहो।
दूसरोंके अहितमें निश्चय ही अपना अहित होगा, अतः किसीका अहित मत करो।
अभिमान-भरे, रूखे, कड़े शब्दोंसे सबको दुःख होता है, अतः ऐसे शब्द कभी मत बोलो।
सम्मान, सत्य, प्रेम तथा हित सुखदायक हैं—अतएव दूसरोंके प्रति इनका ही प्रयोग करो।

स्वर्गका अजीब मुकदमा धरतीपर

[कहानी]

(लेखक—डा० श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्० ए०, पी-एच्० डी०)

'ओह ! सिरमें बड़ी जोरकी पीड़ा उठ आयी है ।'

'महाराज ! घोड़ेसे उतरकर तनिक विश्राम कर लीजिये ।'

'अरे ! हरिणका पीछा करते-करते हम इतनी दूर निकल आये हैं···उधरसे आया वह सिंह···हरिणको छोड़ सिंहसे···उफ् ! यह सिर-दर्द !'

'महाराज ! आप उसीसे भिड़ गये । इसीमें थककर घायल हो गये ।'

'शिकारीके सामने कोई भी वन्य पशु आये, वह पीछे नहीं हटता ।'

'महाराज ! आप और सिंहमें मुठभेड़ देरतक चली । उसने भी आक्रमण किया, किंतु वह हिंसक अन्तमें आपके पैने तीर–तलवारसे बुरी तरह घायल होकर भाग निकला···। पता नहीं लग रहा है, किधर भागकर छिप गया वह सिंह ।'

'किधर गया वह सिंह···लेकिन···यह पीड़ा ओह ! सिरमें बड़ा दर्द है, सारा शरीर टूटा-फूटा हो रहा है । युद्ध करते-करते थकान रग-रेशेमें घुस गयी है···घोड़ेपर बैठा तक नहीं जाता···बड़ी कमजोरी आ रही है···ओह !···।'

'महाराज ! आप सिंहसे मुठभेड़में बुरी तरह घायल हो गये हैं···।'

'मुझे तो अन्त समीप दीखता है···रह-रहकर विगत कटु स्मृतियाँ मानस-पटलपर उभर रही हैं ।···हाय ! मैंने अमुकके प्रति कर्तव्य-पालन नहीं किया । अमुकको न्याय नहीं दिया ।···मेरी कई जिम्मेदारियाँ अभी पूर्ण करनी शेष हैं ।···मैं अपने उच्च आदर्शोंको पूर्ण न कर सका ।··· मुझसे अनजानमें पाप हो गया । हाय ! यह मौतकी काली परछाईं क्या मुझे निगल लेगी ? हाय ! क्या इस वनमें ही मेरा अन्तकाल लिखा है ? मेरे जीवनकी कटु स्मृतियाँ चक्कर लगा रही हैं···।'

यह कहते-कहते एक प्रकारकी बेहोशी सम्राट् विक्रमादित्यके शरीरपर छा गयी । उनके साथके सरदारोंने बड़ी सावधानीसे उन्हें घोड़ेकी पीठसे नीचे उतारकर एक वृक्षकी शीतल छायामें लिटा दिया । उनके उपचारकी कोशिशें होने लगीं···भगदड़ मच गयी ।

··· ··· ···

एक बार न्यायमूर्ति सम्राट् विक्रमादित्य वनमें शिकार खेल रहे थे । जब राजधानीके शुष्क कार्योंसे वे ऊब जाते थे, तो उसे मिटानेके लिये जंगलमें शिकार खेलने निकल जाते । अनेक शिकारी और सरदार उनके साथ रहते । कुछ दिन बड़ी भाग-दौड़ रहती । ऊब दूर होकर जीवनमें परिवर्तन आ जाता ।

संयोगकी बात ।

उस दिन सिंहके आखेटमें विक्रमादित्य थक और घायल होकर परेशान हो उठे । शरीरमें तो पीड़ा और थकान थी ही, मन भी पुरानी स्मृतियोंके गुप्त भारसे उद्विग्न हो उठा ।

विक्रमादित्य गये थे परिवर्तन और रोमाञ्चकारी मनोरंजनके लिये, उनके सभी मित्र, शिकारी, सरदार प्रसन्नमुद्रामें थे, पर भाग-दौड़ और आखेट दिनभर चलता रहा । उनके शरीर और मस्तिष्कपर इतना तनाव बढ़ा कि सम्राट् उसे न सँभाल सके । वे वृक्षकी छायामें लेटे थे । सभी लोग चारों ओर चिन्तित मुद्रामें बैठे तरह-तरहके उपचार कर रहे थे । सम्राट्के नेत्र दर्दसे मुँदे थे, जैसे सायंकालमें बंद होते हुए कुम्हलाये कमल !

'ओफ ! यह तो बड़ा बुरा हुआ । सम्राट्के प्राण संकटमें हैं । अब क्या किया जाय ? कैसे इनके प्राण बचें ?' कई प्रकारकी आवाजें सुन पड़ती थीं ।

सभी घबरा रहे थे । वे सहायताके लिये इधर-उधर भागने लगे । क्षणभरमें आखेटका राक्षसी-ताण्डव विलुप्त हो गया, जैसे भयंकर तूफानके उपरान्त मौत-जैसी खामोशी !

घायल विक्रमादित्यको स्वस्थ करनेकी तात्कालिक औपचारिक युक्तियाँ होने लगीं । उस बियावान जंगलमें, जो भी चिकित्सा-सम्बन्धी सहायता उपलब्ध थी, उनका जल्दी-जल्दी उपयोग किया गया । हर कोई हितैषी उन्हें स्वस्थ करनेको अपनी दवाई बता रहा था, पर विक्रम बेचैन तड़प रहे थे, जैसे पानीसे निकली हुई मछली !

सौभाग्यसे उस दिन राजवैद्य भी शिकारमें साथ ही

थे। उनके साथ जो भी औषधियाँ थीं, उन्होंने एक-एक कर उनका उपयोग भी किया, जंगलसे ताजी जड़ी-बूटियाँ भी लाये, हर प्रकार उपचार किया, परंतु हाय! विक्रमादित्यकी मानसिक पीड़ा कम न हुई! सिरमें इतना दर्द बढ़ा कि वह फटने लगा।

उन्हें स्वस्थ न होता देख सभी हितैषी व्यग्र हो उठे।

'क्या करें? अब हे परमेश्वर! विक्रम-जैसे न्यायी शासकको स्वस्थ कीजिये।' सर्वत्र यही पुकार थी।

इस एकत्रित जनसमुदायमें चिन्ता काले अन्धकारकी तरह फैल गयी।

झाड़-फूँक करनेवाले बुलाये गये। उन्होंने अपनी मन्त्रविद्याकी शक्तिसे सम्राट्को स्वस्थ करना चाहा, किंतु सब व्यर्थ।

जंगलमें रहनेवाले वयोवृद्ध अनुभवी लोगोंने अपने उपचार किये, पर रोगीकी मानसिक व्यथाएँ और मनका भार हलका न हुआ।

विक्रमादित्य जलसे निकली हुई मछलीकी तरह तड़पने लगे।

ईश्वरकी लीला विचित्र है। उनकी गुप्त दैवी शक्ति विश्वको सूत्रधारकी भाँति संचालित करती रहती है। अनेक बार ऐसी-ऐसी अद्भुत और विलक्षण घटनाएँ हो जाती हैं कि मनुष्य आश्चर्यमें पड़ जाता है।

ऐसी ही एक दैवी चमत्कारपूर्ण घटना यहाँ घटित हुई।

यकायक ऊपर आकाशमें शोर होने लगा। यह मामूली कोलाहल न था। जैसे आकाशमें गुजरते हुए हवाई जहाजसे स्वर आता है, वैसा भी न था। विचित्र प्रकारके स्वर मिले-जुले थे। पृष्ठभूमिमें वायुयान-जैसी सरसराहटके साथ कुछ गरमागरम बहस! कुछ झगड़े-जैसी उत्तेजित परिस्थितियाँ! तर्क और वाद-विवादकी तरहका कोलाहल यकायक ऊपर आकाशमें भर गया।

सबके नेत्र ऊपर उठ गये। सम्राट्की मोहनिद्रा भी टूटी और उन्होंने भी आकाशकी ओर देखा।

आश्चर्य था!

उन्होंने पाया कि स्वर्गकी अनेक पूज्य देवियाँ—लक्ष्मीजी, सरस्वतीजी, दुर्गा, पार्वतीजी इत्यादि अनेक दैवी शक्तियाँ परस्पर किसी विषयपर झगड़ती हुई आकाशमार्गसे गुजर रही थीं। उन सबकी दृष्टि भी पृथ्वीपर पड़े सम्राट् तथा चिन्तानिमग्न इस जन-समूहपर पड़ी। उन्हें सम्राट्पर दया आ गयी और सहानुभूतिवश वे अपना झगड़ा छोड़कर पृथ्वीपर हो रहे इस संकटके सम्बन्धमें बातचीत करने लगीं—

'अरे! नीचे पृथ्वीपर आज यह कैसी भीड़-भाड़ है?' पार्वतीजीने आश्चर्यसे पूछा।

ज्ञानकी देवी सरस्वतीजीने अपने दिव्य नेत्रोंसे धरतीका सारा दृश्य देखा। परिस्थितिका अध्ययन करनेके बाद वे बोलीं, 'पार्वतीजी! विक्रम शिकार खेलते-खेलते आज अभी-अभी यकायक बीमार हो गये हैं। शारीरिक थकानके अतिरिक्त मानसिक भार भी कम नहीं है। अनेक प्रकारके उपचार हो चुके हैं, राजवैद्यने भी पर्याप्त चिकित्सा कर ली है, झाड़-फूँकसे भी कोई लाभ नहीं हुआ है। देखिये न, सभी कैसे चिन्तित दिखायी देते हैं!'

अन्य देवियाँ परिस्थितिका अध्ययन करने लगीं।

सभी विक्रम-जैसे न्यायी सम्राट्के दुःखसे विक्षुब्ध हो उठीं। लक्ष्मीजीके मुँहसे हठात् निकल गया, 'सचमुच सभी व्यक्ति बड़े दुखी हैं। काश! विक्रमको उनके शारीरिक तथा मानसिक थकानसे मुक्ति मिल जाती। इतने सज्जन सम्राट्की प्राणरक्षा करनी चाहिये।'

'हाँ, हाँ। यह परोपकारका कार्य अवश्य होना चाहिये।' सबने निर्णय कर डाला।

× × ×

सभी देवियोंमें 'कौन देवी सबसे अधिक शक्तिशालिनी है?' इस प्रश्नपर झगड़ा चल रहा था। कोई भी देवी अपनेको दूसरेसे छोटा माननेको तैयार न थी। हर एक अपनी महत्ता प्रमाणित करनेके लिये नये-नये तर्क दे रही थी, किंतु दूसरी देवियाँ उसे स्वीकार नहीं करती थीं। महत्ताके प्रश्नपर गरमागरम बहस चल रही थी उन सबमें।

लक्ष्मीजीका तर्क था, 'मैं धन-सम्पत्तिकी अधिष्ठात्री हूँ। आज समाज क्या, विश्वमें मेरी आर्थिक शक्तिके समक्ष और कोई ताकत नहीं ठहर सकती। रुपयेकी शक्तिसे ही यह मनुष्य चल रहा है। मैं कंगालको अमीर बना दूँ तो वह क्षणभरमें अपने दुःख-दर्द और चिन्ताओंके भारसे मुक्ति पा सकता है। बीमारको किसी दवाईकी जरूरत नहीं,

केवल रुपयेकी गरमीकी आवश्यकता है। अतः मैं सबसे अधिक शक्तिशालिनी हूँ।'

पर बीचमें ही बातको काटती हुई सरस्वतीजी टोक देतीं। वे कहतीं, 'नहीं, सो बात नहीं है। अज्ञानसे आदमी बीमार होता है। जिस मनुष्यकी विवेकबुद्धि विकसित हो जाती है, वह अपने आपको शरीर नहीं, आत्मा मानता है। आत्मा सत्-चित्-आनन्दस्वरूप है। वह विकाररहित है। विवेकवान् अपने-आपको शरीर नहीं, आत्मा मानता है और इस प्रकार दुःख, रोग, व्याधिसे मुक्त रहता है। मनुष्यको स्वस्थ रहनेके लिये अधिक-से-अधिक ज्ञान, बुद्धि, विवेक, कलात्मकता, संगीत, साहित्य और कलात्मक विषयोंमें रस लेनेकी आवश्यकता है। बुद्धिकी शक्तिसे ही मानव चलता है। यदि सरसता न हो, तो मनुष्य प्रसन्न न रहे। रोगी हो जाय। मेरी बराबरी कौन कर सकता है?'

'आर्थिक और ज्ञानकी शक्ति दोनों ही छोटी हैं' बीचमें हस्तक्षेप कर पार्वतीजी कह उठतीं, 'नारी स्वयं ही महौषधिकी तरह शीतल संजीवनी शक्ति है। पतिव्रता प्रेममयी पत्नीके सम्पर्कसे पलभरमें सारे शारीरिक और मानसिक कष्ट दूर हो जाते हैं। जो प्रेमका यथार्थ स्वरूप समझते हैं, वे कभी रोग और व्याधिग्रस्त नहीं हो सकते। नारी ही पुरुषको स्वर्गसे पृथ्वीपर धकेल लायी थी, वही अपने प्रेम और बलिदानकी शक्तिसे उसे वापिस स्वर्गमें ले जा सकती है।'

'नहीं, नहीं,' कड़कती हुई आवाजमें भगवती दुर्गा बोलीं, 'तुम सब भोले भावुकों-जैसी बातें करती हो। रोग, व्याधि, शोक इत्यादि निर्बलोंको सतानेवाले मनोविकार हैं। निर्बलोंपर ही सारी मुसीबतें आती हैं। कायर लोग दिलोंमें दो कमजोर भावनाएँ जगाते हैं—करुणा और सहानुभूति! मैं तो शारीरिक शक्तिको ही सबसे उत्तम मानती हूँ।'

अन्य देवियोंके स्वर साफ न सुन पड़ते थे। बहस चल रही थी। झगड़ा बढ़ता जा रहा था, पर कोई निर्णय न हो पा रहा था।

'यह झगड़ा व्यर्थ है। इस तरह बहससे हम यह निर्णय न कर सकेंगी कि हम सब देवियोंमें कौन बड़ी है?' उन्होंने थककर कहा—'बड़प्पन तय करनेकी कोई और कसौटी सोचनी चाहिये।'

और वे कोई ऐसी युक्ति सोचने लगीं जिससे वह प्रश्न हल हो सके। लक्ष्मीजीने सुझाव दिया—

'मेरे मनमें एक युक्ति आयी है। उससे स्पष्ट हो जायगा कि कौन बड़ी है।'

'वह क्या युक्ति है?' सरस्वतीजीने उत्सुकतापूर्वक पूछा।

लक्ष्मीजी कहने लगीं, 'सम्राट् विक्रमादित्य भारतमें न्याय करनेमें सर्वोपरि हैं। उनकी न्याय-क्षमताको हर कोई जानता है। हम सब उनके पास चलें और इस बातका निर्णय करायें कि हम देवलोककी देवियोंमें कौन वास्तवमें बड़ी है? यह मुकदमा धरतीपर तय हो? देखिये, वे सामने लेटे हैं विक्रम!'

'हमें सहर्ष यह चुनौती स्वीकार है।' पार्वतीजीने सहमति प्रकट की।

फिर क्या था, देवलोककी सभी देवियाँ परस्पर बहस करना छोड़ विक्रमादित्यकी ओर उतरने लगीं। एक चकाचौंध करनेवाले दिव्य प्रकाशके साथ वे सब आकाशमार्गसे नीचे पृथ्वीपर आ गयीं।

सभी मनुष्य आश्चर्यमें पड़ गये! ओफ! यह कैसा अद्भुत चमत्कार था।

त्वामग्ने पुष्करा दध्यथर्वा निरमन्थत।
मूर्ध्नो विश्वस्य वाघतः॥

(सामवेद ९)

अर्थात् परमात्मा ज्ञानियोंके हृदयमें प्रकाशरूप और मस्तिष्कमें विचाररूपमें प्रकट होता है।

परमात्माकी शक्तिस्वरूपा उन देवियोंके सुन्दर स्वरूपोंको देखकर सभी मनुष्य विस्मय-विमुग्ध हो गये। वे उस आभाके समक्ष कुछ बोल न सके। मूक पाषाण-प्रतिमाओंकी तरह उन्हें निरखने लगे।

सम्राट् विक्रमादित्यके मनमें एक विचार कौंध उठा—

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।
स भूमिꣳ सर्वतः स्पृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम्॥

(यजुर्वेद ३१। १)

अहह! यह दिव्यप्रकाश तो उसी परमात्माका हो सकता है, जो असंख्य सिर, आँख और पाँववाला है और पाँच सूक्ष्म भूतोंसे युक्त सम्पूर्ण विश्वमें व्याप्त है। उस नित्य शुद्ध, बुद्ध और मुक्तस्वभाव परमात्माका ही ऐसा चमत्कार हो सकता है।

एकसे एक दैवी ज्योतिसे परिपूर्ण देवी उनके सामने खड़ी थीं। वे आश्चर्यचकित थे, मानो दिवा-स्वप्न देख रहे हों।

'आप कौन हैं ? मैं इस चमत्कारको कुछ भी समझ नहीं पा रहा हूँ।'

'सम्राट् ! चकित-विस्मित न हों। हम स्वर्गकी देवियाँ हैं। स्वयं ही यहाँ उपस्थित होनेका कारण स्पष्ट कर देंगी।'

इस समय विक्रमके सिरमें दर्द और बढ़ गया था। उन्हें मौतके दृश्य दीख रहे थे। पुराने किये हुए दोष, गलतियाँ, मानसिक द्वन्द्व, कसक, वेदनाएँ और अतीतकी व्यथाओंसे वे उद्विग्न थे। सिर मानसिक भारसे चकरा रहा था। पीड़ाके कारण उनका हाथ माथेपर टिका हुआ था।

'ओफ् ! मेरे सिरमें बेहद दर्द हो रहा है। मस्तिष्क मानो फटा ही पड़ रहा है। कृपा कर आप स्पष्ट कीजिये कि मुझसे आखिर क्या चाहती हैं ? मैं क्योंकर आपकी सेवा कर सकता हूँ ?'

'हमें दुःख है', सरस्वतीजी बोलीं कि 'आपको पीड़ाके इन क्षणोंमें और कष्ट दे रही हैं, किंतु हमारी समस्याका निदान केवल आपके पास है। आपकी बुद्धि, विवेक और न्यायपटुता विख्यात है। आप सबसे व्याख्यात न्यायकर्त्ता हैं।'

'क्या आपका भी कोई मुकदमा है ? किसी झगड़ेका फैसला कराना है ?' विक्रमने पूछा।

'देवलोकका एक मुकदमा आपकी अदालतमें तय कराना है।'

'कहिये, क्या गुत्थी है आपकी ?'

'मैं सरस्वती हूँ और वह देखो, ये धनकी देवी लक्ष्मीजी हैं, ये पार्वतीजी और वे भगवती दुर्गा······और भी वे सब देवियाँ ही हैं·····परमात्माकी नाना शक्तियाँ·····।'

'हाँ, हाँ, मैं सबको देखकर जीवन धन्य कर रहा हूँ। परमात्माकी दिव्य शक्तियोंके सम्बन्धमें जो सुना है, वह अपने चर्मचक्षुओंसे प्रत्यक्ष देख रहा हूँ। अहह ! आप देवियोंने मुझपर बड़ी अनुकम्पा की है, जो आज दर्शन दिये हैं·····मैं धन्य हो गया !'

'हमारा अपना ही स्वार्थ है यहाँ आनेमें !' दुर्गाजी बोलीं।

'कहिये न, मैं आपकी सेवा कैसे कर सकता हूँ ? न जाने क्यों आज मेरे सिरमें बड़ी पीड़ा हो रही है। विगत कटु स्मृतियोंको मैं भूल नहीं पा रहा हूँ। मनपर बड़ा भार है। फिर भी जो सेवा बन पड़ेगी, उसे करनेको प्रस्तुत हूँ।'

'एक झगड़ा चल रहा है, हम सबमें।'

'स्पष्ट कीजिये, क्या समस्या है ? मैं उसपर विचार कर लूँ।'

'सरस्वतीजी, आप वाक्पटु हैं। आप ही मामला स्पष्ट कीजिये।' दुर्गाजी बोलीं।

'ओफ् ! पीड़ाके कारण मेरा सिर फटा जा रहा है। बड़ा सख्त दर्द है। नेत्रतक नहीं खुल पा रहे हैं। कृपया संक्षेपमें मुकदमा स्पष्ट कीजिये।'

'समस्या यह है कि देवलोककी सब देवियोंमें आज इस बातको लेकर झगड़ा हो रहा है कि हम सबमें बड़ी देवी कौन है ? इसका निर्णय आपके ऊपर छोड़ा गया है।'

यह समस्या बड़ी विचित्र थी।

मुकदमा सुनकर विक्रम सोच-विचारमें पड़ गये। उधर देवलोककी सभी देवियाँ उनके सम्मुख उत्सुकतापूर्वक निर्णयको सुननेकी प्रतीक्षा करने लगीं।

इस श्रेष्ठताका निर्णय किस आधारपर किया जाय ?

उत्तमताकी कसौटी क्या हो ? शारीरिक शक्ति, आर्थिक शक्ति, बौद्धिक शक्ति, मानवके लिये उपयोगिता या कोई और आधार ?

कुछ देर खामोशीका वातावरण रहा ! अबतक पृथ्वीपर रहनेवालोंके मुकदमे स्वर्गके देवता तय करते थे, आज स्वर्गका मुकदमा तय करने जा रहे थे पृथ्वीके विक्रम।

वे मामलेपर सोच-विचार करते रहे।

यकायक उन्हें एक उपाय सूझा।

बोले 'परमात्माकी शक्तियोंके प्रतीक··हे देवियो ! क्षमा करें। मुझे आप सबकी परीक्षा लेनी होगी। तैयार हैं आप परीक्षा देनेके लिये ?'

परीक्षाका नाम सुनकर देवलोककी शक्तियाँ बेचैन हो उठीं। कौन परीक्षा देना चाहता है भला।

'अच्छा, अच्छा, आप हमारी परीक्षा ले देखिये। तब आपको ही करना है कि हम सबमें कौन बड़ी है ?'

'कोई व्यक्ति जबतक परीक्षा देनेको तैयार नहीं होता, तबतक उसे अपनी कमजोरियाँ नजर नहीं आतीं।'

'निस्संदेह आप प्रश्न कीजिये। इम्तहान तुरंत आरम्भ कर दीजिये।' देवियोंने पुनः आग्रह किया।

सम्राट्ने परीक्षाका सवाल किया—'जो देवी मेरे सिरकी यह भयानक पीड़ा बंद कर सके, वही मेरी दृष्टिमें सर्वश्रेष्ठ है। जिससे मानवका अधिक-से-अधिक उपकार हो, ज्यादा-से-ज्यादा फायदा हो, वही सर्वोत्तम देवी है। जो मुझे मानसिक द्वन्द्वों, गुप्त व्यथाओं, चिन्ताओंसे एकदम मुक्ति दिला सके, वही देवी सबसे बड़ी है।'

'अरे, यह तो बड़ी साधारण-सी बात है।' लक्ष्मीजी चिल्ला उठीं। 'मैं ही पहले आपका दुःख दूर करती हूँ।'

फिर क्या था। लक्ष्मीजीने धनकी शक्तिका उपयोग किया। आर्थिक सम्पन्नताके आकर्षक चित्र प्रस्तुत किये। उन्होंने चुपचाप सम्राट्के कानोंमें कहा—

'मैं आपको कुबेरकी तरह धनपति बना दूँगी। संसारकी सारी सम्पदा आपके पास होगी। आप युग-युग तक सम्पदाका उपभोग करेंगे। अपने विपुल ऐश्वर्यवाले स्वरूपको मनमें स्थान दीजिये। आर्थिक शक्तिसे आप पल-भरमें स्वस्थ हो जायँगे।'

सम्राट्ने वैसा ही किया, किंतु उनकी मानसिक पीड़ा कम न हुई।

'मुझे यह कहते हुए खेद है कि लक्ष्मीजीकी शक्ति मुझे स्वस्थ न कर सकी।'

फिर सरस्वतीजीने विक्रमके सिरपर हाथ रक्खा। धीरे-धीरे कहा, 'सम्राट्! मैं संसारका सब ज्ञान, विज्ञान, कलाएँ आपको दे रही हूँ। उनके द्वारा आप अपने निर्विकारी रूपका ध्यान कीजिये। सद्-ज्ञान, सद्बुद्धि और सद्विवेकसे आप अपनेको शरीर नहीं, आत्मा मानिये। अब आप स्वस्थ हो जायँगे।'

पर ऐसा विचार करनेपर भी विक्रम ज्यों-के-त्यों पीड़ासे तड़पते रहे। सरस्वतीजीका ज्ञान-विज्ञान भी असफल रहा।

अब दुर्गाजीने अपनी शारीरिक शक्ति देकर सम्राट्को स्वस्थ करना चाहा। भगवती दुर्गा कहने लगीं, 'मैं शारीरिक शक्ति आपको दे रही हूँ। यह लीजिये, आपके अङ्ग-प्रत्यङ्गोंमें यौवनकी उद्दाम शक्ति आ रही है। इस शारीरिक सामर्थ्यसे आपकी पीड़ा दूर हो जायगी।'

लेकिन भगवती दुर्गाकी शक्तिसे भी सम्राट्की मानसिक पीड़ा कम न हुई। वे भी परीक्षामें अनुत्तीर्ण रहीं।

इसी प्रकार और भी अनेक देवियोंने अपनी-अपनी शक्तियोंसे सम्राट्को स्वस्थ करना चाहा, पर सब व्यर्थ। सम्राट् उसी प्रकार नेत्र मूँदे अधमरे-से पड़े रहे, कुम्हलाये हुए फूलकी तरह।

'अब मुझे भी अपनी शक्ति आजमाने दीजिये।' कहते-कहते लज्जाभारसे दबी एक देवी आगे आयीं।

प्यारभरे स्वरमें वे सम्राट्के गुप्त मनको यह मधुर संकेत देने लगीं—

'सम्राट्! आप अपनी पुरानी कटु अनुभूतियोंको भूल जाइये। भूलना एक बहुत अच्छी दवाई है। अपनी पराजय, अपमान, दुःख, क्षोभ और सब प्रकारकी पुरानी त्रुटियोंको भूल जाइये। असफलताओं और व्यथाओंको याद मत रखिये। यदि कोई राजकार्य-सम्बन्धी कुत्सित चिन्ता सता रही है, तो उसे भुला देनेमें ही भला है। यदि किसी शत्रुसे प्रतिशोध या हिंसाकी दुष्ट भावना सता रही है, तो उसे मनरूपी उद्यानसे उखाड़ फेंकिये। अपने दोष और भूलोंको स्मृति-पटलपर मत लाइये''भूल जाइये, प्रारम्भिक जीवनकी विवशता, दरिद्रता और शोचनीय अवस्थाको''भूलिये, अपनी कमजोरियों और शत्रुओंको''पापोंको''आत्मग्लानिको। जो पाप हुआ हो उसे भुलाकर ही आप स्वस्थ हो सकते हैं। इस दवाईको काममें लाइये''और आप स्वस्थ हो जायँगे।'

'अहह! इस प्रयोगसे तो मुझे बड़ी मनःशान्ति और आन्तरिक शीतलता मिल रही है। मेरी मानसिक थकान कम हो रही है।'

देवी आगे बोलीं, 'यह संसार भगवान्की क्रीड़ास्थली है। इसमें सभी समस्याएँ, सिद्धियाँ और विभूतियाँ भरी पड़ी हैं। ऐसा कोई भी अभाव यहाँ नहीं है, जिसकी त्रिकाल अथवा त्रिलोकमें कल्पना की जा सकती हो। कष्टों और अभावोंको विस्मृत कीजिये और अपने निखरे हुए समृद्ध स्वरूपपर ही मनको एकाग्र कीजिये। भगवान्के इस भरपूर भंडारके सारे सुख, सारे वैभव और ऐश्वर्य आपके लिये हैं। उस स्वयंभू एवं पूर्णकाम परमात्माको किसी वैभवकी आवश्यकता नहीं है। उन्हें तो उसने अपनी संतान मनुष्यको बाँटनेके लिये रख छोड़े हैं। मनमें छिपी मलिनताको दूर करें।'

'मुझे इस संदेशसे बड़ी शान्ति मिल रही है। मन स्वस्थ होने लगा है और पीड़ा कम हो रही है। कौन हैं ये देवि ?'

अन्य देवियोंको इस देवीसे बड़ी ईर्ष्या हो रही थी। उन्होंने कहा, 'ये हैं विस्मृति देवि ! भुलानेकी कलामें प्रवीण !!'

'अहह ! विस्मृति देवि ! आपके मृदुल स्पर्श और दिव्य संदेशसे तो मुझे बड़ी आन्तरिक शान्ति मिल रही है। मैं कष्टोंको भुलाकर मानसिक भार हल्का कर रहा हूँ।'

विस्मृति देवी आगे कहने लगीं—

'हाँ, सम्राट् ! विस्मृतिके प्रभावसे थका-हारा मानव अपनी मुसीबतें भूलता है। पुरानी गलतियोंको भूलकर ही वह मानसिक द्वन्द्व और व्यथाओंसे छुटकारा पाता है। आप कड़वी बातोंपर रंज-गम न कीजिये' 'कुढ़िये मत' 'ऐसा कोई आदमी नहीं, जिसके यहाँ कभी-न-कभी कोई दुःखदायी बातें या अप्रिय घटनाएँ न हुई हों' 'अपने विषयमें जो कटु प्रसंग हुए हों, उन्हें याद मत रखिये। भूल जाया कीजिये। दूषित, कड़वी, अपमानजनक, निन्दात्मक बातोंको भूलनेमें ही मनका स्वास्थ्य निहित है। इसी दवाईसे मैंने आपको स्वस्थ किया है। कष्टोंको भुलाकर ही आप स्वस्थ हुए हैं। यह है इस विस्मृति देवीकी कलाकी सार्थकता !'

'सचमुच देवी ! आपके दिव्य सूत्रोंसे मेरी मानसिक पीड़ा कम हो गयी है। अब मैं अपनेको स्वस्थ और संतुलित अनुभव कर रहा हूँ। कष्टोंको भुलानेसे मुझे नयी जिंदगी मिली है।'

इतनेमें बेसब्रीसे सब देवियाँ चिल्लायीं, 'विक्रम ! हमारे मुकदमेका कोई निर्णय अभी तक नहीं हुआ है। आखिर हम सबमें कौन देवी सबसे बड़ी है ?'

'निर्णय हो गया !'

'क्या ? क्या ? क्या ?' सबने उत्सुकतासे पूछा।

'मेरी रायमें सब देवियोंमें विस्मृति देवी ही श्रेष्ठतम हैं। जो आदमीको दुःख-दर्दसे छुड़ाये, वही देवी सबसे उपयोगी है। पुराने दुःख और दोषोंको भुलाकर ही मनुष्य आगे उन्नतिशील हो सकता है। पीड़ाओंको भुलानेवाली देवी ही सबसे बड़ी है।'

'ओफ् ! यह कैसा निर्णय !' यह कहकर स्वर्गकी सब देवियाँ अन्तर्धान हो गयीं।

उन्हें मालूम हुआ कि जबतक आदमी अपनी पुरानी कटु अनुभूतियोंको नहीं भूलता, नयी उत्साहप्रद आशाओंकी कलियाँ नहीं खिलाता, तबतक वह पूर्ण सुखी नहीं हो सकता। समाज और परिवारके दुःख-दर्दके कीचड़में फँसा व्यक्ति, मायामोहके बन्दीगृहमें कैद हमारी आत्मा अपनी संचित वेदनाओंको भूलकर ही आगे बढ़नेकी प्रेरणा दे सकती है।

यद् वदामि मधुमत् तद्वदामि यदीक्षे तद् वनन्ति मा।
त्विषीमानस्मि जूतिमान् अवान्यान् हन्मि दोधतः॥
(अथर्ववेद १२। १। ५८)

अर्थात् मैं सदैव मुखसे मीठे वचन बोलूँ। (मधुर निष्कपट व्यवहारके कारण) सभी मुझसे प्यार करें। मैं सदैव ईश्वरके दिव्य प्रकाशको ही अपने हृदयमें धारण करता चलूँ (मनमें जो छिपी हुई या एकत्रित चिन्तामय ईर्ष्या, घृणारूपी गंदगी है, उसे निकाल फेकूँ)। जो बुरे तत्त्व मेरे निकट आयें, उनका उन्मूलन करूँ।

भगवान् गर्गाचार्य एवं उनका ऐतिहासिक ग्रन्थ गर्ग-संहिता

(लेखक—पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा)

गर्ग नामके अनेक प्रख्यात व्यक्ति हुए हैं। हरिवंश १।३० में दिवोदासके पौत्र तथा प्रतर्दनके पुत्रका नाम गर्ग आया है। इसी प्रकार पुराणोंमें मन्यु राजाके पुत्र तथा शिनिके पिताका नाम भी गर्ग आया है। नारदपुराण १। १४१ में एक कलिङ्गदेशनिवासी गर्ग ब्राह्मणकी बड़ी सुन्दर कथा है। ये शिवभक्त थे। शिवपुराण तथा लिङ्गपुराणमें इन्हें शिवावतार ऋषभ तथा लकुलीशका शिष्य कहा है। पद्मपुराण, उत्तरखण्ड अध्याय २४ में, सृष्टिखण्ड अ० १०, गरुडपुराण अध्याय २१०। १०–२१ (जीवानन्द, रासमोहन, बंगवासी आदि संस्करण) वेङ्कटेश्वर संस्करणके २१९वें अध्यायमें, हरिवंश १। २४। २–२५ तथा श्राद्धमहिमाके निरूपक पितृवर्ती एवं सप्तव्याधाख्यानोंमें—सर्वत्र ही किन्हीं गर्गको ही इनका गुरु कहा गया है (देखिये कल्याण, 'परलोक-पुनर्जन्म-अङ्क पृष्ठ ३५१–३५३)। ऋग्वेद ६। ४७ सूक्तके द्रष्टा भी भगवान् गर्ग ही हैं। ये आङ्गिरस गोत्रके हैं। इनका निवास हिमाचलके पश्चिमोत्तर कोणमें गर्गाचल-शिखरपर है। इनका एक आश्रम रायबरेली जिलेमें गगास नामक स्थानमें है (देखिये तपोभूमि)। कुरुक्षेत्रमें भी गर्गस्रोत नामके स्थानमें इनका आश्रम निर्दिष्ट है। यह सरस्वतीके तटपर था (देखिये महाभारत, शल्यपर्व ३७। १४–१८)। यहीं उन्होंने ज्योतिषके सब ग्रन्थ लिखे तथा ज्ञान प्राप्त किया (महाभारत, शल्य० ३७। १४–१८ तथा महाभारत-कोश, सोरेन्सन एवं गीताप्रेस)। ये परम शिवभक्त थे (महाभारत, अनुशासन० १८। ३८–३९)। किंतु गर्ग-संहिता इतिहास-ग्रन्थ गर्गाचलपर लिखा गया। ये महाराज पृथुके तथा यदुवंशियोंके गुरु रहे (महाभारत, शान्ति० ५९। ११ तथा भागवत १०। ८)।

ऋषि-गोत्र-प्रकरणमें महर्षि पाणिनिने ४। १। १०५ सूत्रमें गर्गाचार्यका नाम बहुत-से प्रसिद्ध ऋषियोंमें सर्वप्रथम रक्खा है। 'गर्गादिभ्यो यञ्' सूत्रमें यदि काशिका, सरस्वती-कण्ठाभरण, चान्द्रवृत्ति, गणरत्नमहोदधि, मुग्धबोध व्याकरण, जैनेन्द्र-महावृत्ति, प्रक्रियाकौमुदी, शब्दकौस्तुभ (Bhotling), सिद्धान्तकौमुदी-परिशिष्ट (पृ० ७६० वेङ्कटेश्वरप्रेस, पुराना संस्करण, नयेमें पृष्ठ ७८७), पाल्यकीर्तिके शाकटायन-व्याकरण सिद्ध हैम-शब्दानुशासनकी बृहद्वृत्ति, कर्मदीश्वरके संक्षिप्तसार, शरणदेवकी दुर्घट वृत्ति, कपिलदेव तथा श्रीएस सेनगुप्त (S. Sen Gupta) आदिके शोध-निबन्ध, "Contribution towards a critical Edition of the Gaṇapāṭha" आदिको भी देखा जाय तो आचार्य गर्गके बाद प्रायः २०० शब्द आते हैं—जिनमें संकृति, व्याघ्रपात्, अगस्ति, पुलस्ति, चमस, रेभ, अग्निवेश, शङ्ख, कण्व, शकल, याज्ञवल्क्य, शाण्डिल्य, मुद्गल, जमदग्नि, पराशर, जतुकर्ण, अश्मरथ, स्थूरा, दल्भ, एक, चणक, तित्तिरि और वामरथ आदि ऋषियोंके नाम बड़े महत्त्वके हैं। इन सबके प्रथम आचार्य गर्गका नाम जोड़ना पाणिनि-जैसे जौहरीका अविचारित कार्य न होगा। इसमें आचार्यकी प्रतिष्ठा, तप, विद्या आदि कार्य ही हेतु रहे होंगे। अन्यथा इस सूत्रमें वे इनमेंसे किसीका भी नाम आगे रख सकते थे।*

'गर्ग' शब्दसे आगे कैसी अनुवृत्ति होगी, इस सम्बन्धमें श्रीराधाकुमुदजीका मत देखिये—

"Pāṇini had quite a number of references to the Gotra...... Three forms of surnames are mentioned by Pāṇini as denoting to the Gotra of a family...... Thus Garga or Gargacharya was the recognized head of the united family of all the Gargas, who may be more than a hundred. The second form of the surname was applied to his eldest son and heir, who was called Gargi; while the third form was applied to his grandsons called Gargyas......and the great grandson were called Gargāyaṇas."

(Ancient Indian Education, p. 242-43)

अर्थात् गर्गका अपत्य 'गार्गि', पौत्र 'गार्ग्य' और प्रपौत्र 'गार्गायण' कहलाता था। इत्यादि

* इस तरहके अन्य ऋषिनाम-युक्त पाणिनिसूत्र ये भी हैं—२। ४। ५९, ६०, ६९, ७०; ४। १। १००, १०२, १०६–८, ११७–९, १२४; ४। २। १११; ४। ३। ८०, १२६ आदि। इनमें पैल, यास्क, अत्रि, भृगु, वसिष्ठ, गोतम, शुनक और द्रोण आदिके नाम मुख्य हैं।

गर्ग-संहिताका रचनाकाल

पाश्चात्य विद्वानोंने इन सब बातोंपर बहुत मस्तिष्क खपाया है। यद्यपि उनकी सारी बातें मान्य नहीं हैं, फिर भी उनका विद्यासम्बन्धी श्रम तथा व्यसन श्लाघ्य है। वे लोग गर्ग-संहिताको ऐतिहासिक—इतिहासकी सूचना देनेवाला ग्रन्थ मानते हैं तथा गुप्तकालकी रचना स्वीकार करते हैं। श्रीइ. जे. रैप्सन यवनाक्रमणके विषयमें गर्ग-संहिताकी प्रामाणिकता स्वीकार करते हैं—

It is certain, however, that the military expeditions of the Yavanas were by no means confined within these limits (Frontier Province and Punjab). One such incursion, which broke through the Delhi passage and penetrated the midland country as far as Paṭliputra (Patna), is described in the Yuga-Dharma, one of the chapters of the Gargasaṃhitā. Like all Puranic literature, we find here a record of past events in the convential form of prophecy; and however late the work may be in present form, there is no reason to doubt that, like the Purāṇas generally, it (*i. e.*, Gargasaṃhitā) embodies a more ancient tradition. From the passage in question we gather that, the viciously valiant Greeks, after reducing Sāketa (in Oudh), the Pañchala country (in the doab between the Yamuna and the Ganges) and Mathura, reached Pushpapur (Paṭliputra or Patna), but that they did not remain in the midland country because of a dreadful war among themselves, which brokeout in their own country—an evident allusion to the internecine struggle between the houses of Euthedemus and Eucaratides. This account is supported by Patañjali also, etc.

(See Kern's "Bṛhat Saṃhitā", page 37 and "The Royal Houses of Yavanas", p. 491, Cam. Hist., v. 1, Chap. xxii, etc)

अर्थात्—'इसमें कोई संदेह नहीं कि यवनोंकी सेना पंजाबसे आगे नहीं बढ़ी। पर गर्ग-संहिताके युगधर्म एवं कलियुग-राजवंश-वर्णनमें यवनोंके पटनातक पहुँचनेकी बात मिलती है। अन्य पुराणोंकी तरह इस गर्ग-संहितामें भी भविष्यवाणीके रूपमें भावी राजाओंका निर्देश है। इस गर्ग-संहिताका यह पिछला अंश चाहे जितना भी नवीन हो, इसके शेष अंश अवश्य ही अन्य पुराणोंकी अपेक्षा प्राचीनतर ही हैं। इस ग्रन्थमें उल्लेख है कि महाबली यवनोंने साकेत (अयोध्या) को तहस-नहस कर पञ्चाल, मथुरा और पुष्पपुरी (पटना) तक धावा किया; पर वे अपने देशमें ही युद्ध छिड़ जानेके कारण यहाँ अधिक समयतक टिक न सके।'

यहाँ Rapson साहबने बड़ी सफाईसे इसके नवीन अंशोंको समझकर इसकी प्राचीनताको पकड़ लिया; किंतु खेद है, भारतके आधुनिक विद्वान् इसे उतना प्राचीन न मानकर ईसाके १०० वर्ष पूर्वका ही मानते हैं। यथा—

'The epoch under review probably saw the composition of the Mahābhāṣya of Patañjali, an exposition of the grammatical aphorisms of Pāṇini. Another grammatical work, the Kātantra or Kalap of Sarvavarman, is traditionally assigned to the Sātavāhana period...Among other celebrities of the period mention may be made of Charaka, Suśruta, Nagarjuna, Kumāra and possibily Aryadeva...The Pali Buddhist canon is said to have been reduced to writing in the first century B. C.... Some scholars believe that works of Garga, portions of Divyāvadāna as well as the Lalitavistara and the Saddharma-Puṇḍarīka are also to be assigned to this age.'

(Civilization in the Maurya-Scythian Era, H. C. Rayachaudhari, Ad. Hist. of India, Part 1, Chap. ix, p. 14?)

इनके अनुसार पाणिनि व्याकरण, कातन्त्र या कलाप व्याकरण तथा चरक, सुश्रुत, नागार्जुन, कुमार, आर्यदेव एवं गर्गाचार्यके ज्योतिष-संहितादि ग्रन्थ इसी समय लिखे गये। दिव्यावदान (कुछ अंश), ललितविस्तर, सद्धर्म-पुण्डरीक आदि बौद्धग्रन्थ भी इसी समयके हैं। इसी प्रकार अन्य भी बहुत-से पाश्चात्योंके मत हैं।

गर्ग-संहिताकी प्राचीनताके कुछ और प्रमाण

गर्ग-संहिताकी प्राचीनता भागवतकी टीकाओंसे सिद्ध है। प्रायः दशमस्कन्धपर भागवतकी पचीसों टीकाएँ हैं और इनमें कोई-कोई तो १० वीं से १३ वीं शतीतककी और अधिकतर १४ वीं, १५ वीं शतीकी हैं। पर इन सभी लोगोंने सर्वत्र खुलकर गर्ग-संहिताके श्लोकोंको ही प्रमाण-रूपमें लिखा है। एक-दो उदाहरण देखिये—

भागवत १० । २९ । १ की टीकामें सभीने श्रुतियोंके नामसे—'कन्दर्पकोटिलावण्ये'......'चिकीर्षाजनि नस्तथा ।' आदि कई श्लोक दिये हैं, जो गर्ग-संहिता, गोलोकखण्ड ४ । २८—२९ के ही हैं। इसके बाद 'आगामिनि विरिञ्चौ' आदि श्लोक भी वहीं ४ । ३१ का है। इसी तरह और आगे भी हैं। नदादिकी व्याख्या भी इसी ग्रन्थसे ली गयी है।

गर्ग-संहिताकी अन्य विशेषताएँ

ग्रन्थ सामने ही है, पाठक देखेंगे ही। इसके श्लोक समस्त काव्यगुणोंसे युक्त हैं। एक श्रीकृष्णका ही वर्णन होनेसे यह पुराण नहीं, इतिहास है।* सभी प्राच्य-पाश्चात्त्य विद्वान् इसे इतिहास ही मानते हैं, भारत-संहिताकी तरह।

सुभाषित-भंडार

(३)

साथ ही यह सुभाषितोंका भंडार है। बहुत-से प्रसिद्ध श्लोक जो सबको याद हैं, पर कहीं भी नहीं मिलेंगे, इसीके हैं। जैसे—

त्वमेव माता च पिता त्वमेव त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव ।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव त्वमेव सर्वं मम देवदेव ॥
(यह द्वारका० १२ । १ । ८ का है)

'गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु०—' आदि २ श्लोक इसीके (४ । १ । १३-१४ के) हैं—

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः ।
गुरुः साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥
अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया ।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥

यह प्रसिद्ध श्लोक भी इसीका है—

नमोऽस्त्वनन्ताय सहस्रमूर्तये सहस्रपादाक्षिशिरोरुबाहवे ।
सहस्रनाम्ने पुरुषाय शाश्वते सहस्रकोटीयुगधारिणे नमः ॥
(विज्ञान० ९ । २२)

भगवान् शंकरकृत षट्पदी† मूलतः इसीके १० । ३९ । २—८ में है, जो आचार्यके नामसे अपार वृद्धिंगत होनेवाले स्तोत्रोंमें मिलकर शङ्काका हेतु बनती गयी है। वैसे, अश्वमेधखण्ड ६१-६२ अध्याय तो सुभाषित-कोश ही है। ये श्लोक अन्यत्र चाणक्य आदिमें सम्मिलित हो गये हैं।

गर्गाचार्यके 'गर्गमनोरमा' तथा 'बृहद्गर्गसंहिता' आदि ज्योतिषके स्वतन्त्र ग्रन्थ तो हैं ही, इस गर्ग-संहितामें भी ज्योतिषकी जगह-जगहपर अमूल्य बातें हैं।

---

* प्राग्वृत्तकथनं चैकराज्यकृत्यमिषादितः । यस्मिन् स इतिहासः स्यात् पुरावृत्तः स एव हि ॥
(श्रीविष्णुधर्म०३ । १५ । १, शुक्रनीति ४ । २९२—९३ इत्यादि)

† ॐ अविनयमपनय विष्णो दमय मनः शमय विषयमृगतृष्णाम् । भूतदयां विस्तारय तारय संसारसागरतः ॥
दिव्यधुनीमकरन्दे परिमलपरिभोगसच्चिदानन्दे । श्रीपतिपदारविन्दे भवभयखेदच्छिदे वन्दे ॥
सत्यपि भेदापगमे नाथ तवाहं न मामकीनस्त्वम् । सामुद्रो हि तरङ्गः क्वचन समुद्रो न तारङ्गः ॥
उद्धृतनग नगभिदनुज दनुजकुलामित्र मित्रशशिदृष्टे । दृष्टे भवति प्रभवति न भवति किं भवतिरस्कारः ॥
मत्स्यादिभिरवतारैरवतारवतावता सदा वसुधाम् । परमेश्वर परिपाल्यो भवता भवतापभीतोऽहम् ॥
दामोदर गुणमन्दिर सुन्दरवदनारविन्द गोविन्द । भवजलधिमथनमन्दर परमं दरमपनय त्वं मे ॥
नारायण करुणामय शरणं करवाणि तावकौ चरणौ । इति षट्पदी मदीये वदनसरोजे सदा वसतु ॥
(अश्व० ३९ । २—८)

मूर्तिमें स्वयंके दर्शन

(लेखक—श्रीहरिकिशनदासजी अग्रवाल)

मूर्तिमें भगवान् है कि नहीं, यह एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न बहुतोंके हृदयोंमें आ उपस्थित होता है । कोई कहता है कि भगवान् निराकार हैं, अविनाशी हैं, सत्-चित्-आनन्द हैं—मूर्तिमें उनके दर्शन किस प्रकार हो सकते हैं ? इस प्रकारकी शङ्का प्रायः सभी आस्तिक एवं नास्तिकोंके मनमें आ उपस्थित होती है । जो आस्तिक है, उसे परम्परासे यह कहा गया है कि मूर्तिमें भगवान् हैं, इसलिये वह उसकी पूजा-अर्चना तथा वन्दना करता है, किंतु चित्तमें शङ्का बनी रहती है; जिसके कारण मूर्तिमें किये दर्शन फलीभूत नहीं होते।

मूर्तिमें ही भगवान् हैं, यह बात गलत है । मूर्तिमें भी भगवान् हैं, यह बात सही है । हम जब मूर्तिमें ही भगवान्के दर्शन करते हैं, तब हम गलत रास्तेमें होते हैं । भगवान्के दर्शन मूर्तिमें ही नहीं, किंतु सब प्राणियों-वस्तुओं-देशोंमें हैं । भगवान् परिच्छिन्न नहीं, व्यापक हैं एवं व्यापक होनेके नाते उस मूर्तिमें भी हैं; यदि हम यह कहें कि मूर्तिमें ही हैं, तो ईश्वरकी व्यापकता जाती रहेगी ।

मैं एक बार माधवबाग-स्थित श्रीलक्ष्मीनारायणके मन्दिरमें दर्शन करने गया । वहाँ अन्य भी बहुतसे लोग खड़े थे, किंतु वहीं कुछ लोग भगवान्की ओर पीठ किये थे । मैंने देखा कि वहाँ एक बड़ा दर्पण लगा था, जिसके अंदर जो लोग भगवान्के दर्शन सीधे नहीं कर पाते, वे उनके दर्शन दर्पणमें कर रहे थे । इसी प्रकार जिन लोगोंको भगवान्के दर्शन साक्षात् संसारमें नहीं होते, वे ईश्वरके प्रतिविम्बरूप दर्शन जगत्के दर्पणमें कर लेते हैं । वे ही भगवान् हर स्त्री-पुरुषमें विराजमान हैं, उन्हींकी सत्ताको लेकर सब वस्तुएँ हैं । अगर उनमेंसे भगवान्की सत्ताको निकाल लिया जाय तो वस्तु एवं व्यक्ति ही न रह जाय ।

एक बार वृन्दावनके एक मन्दिरमें दर्शन करते हुए एक महापुरुषको देखा । वह पाँच मिनटतक भगवान्की मूर्तिपर त्राटक लगाकर दर्शन करता रहा । वह उस समय उसमें इतना तन्मय था कि उसके मनमें सिवा भगवान्की मूर्तिके कोई अन्य वस्तु, व्यक्ति एवं विचार न रह गया था । मूर्तिमें दर्शन वास्तविकतासे तभी होते हैं, जब हमारे अंदरकी चेतना जागती है तथा चेतना तब जागती है, जब मन खाली होता है । मूर्तिके दर्शन करनेपर सिवा मूर्तिके कुछ नहीं रह जाता, मन निस्संकल्प हो जाता है और मनकी निर्विचारावस्थामें सिवा परमात्माके कुछ नहीं रह जाता । भगवान्की मूर्तिके दर्शन करते हुए जब हम तल्लीन हो जाते हैं और मनका निरोध हो जाता है, तब फिर उस निरोधित मनके अंदर सिवा भगवान्के अन्य कुछ नहीं रह जाता । मन भगवन्मय हो जाता है । जब हम भगवान्की मूर्तिको स्थूल दृष्टिसे केवल बाहर ही देखते, किंतु मनमें अन्य विचार करते हैं, तब हम विचारोंका ताँता बन जानेके कारण मूर्तिके सामने खड़े रहनेपर भी उसे समग्र दृष्टिसे नहीं देख सकते, इसीसे हमें भगवान्के दर्शन नहीं हो पाते ।

मूर्तिके दर्शन करते-करते मन खाली हो जाता है; जिससे चेतना जाग जाती है और जागी चेतनाके अंदर स्वबोध हो जाता है । हम गये तो थे मूर्तिमें भगवान्के दर्शन करने, किंतु हमें भगवान् मिल गये अपने अंदर ही । बाहरसे हम अंदर आ गये एवं अंदर आते ही निजस्वरूपकी प्राप्ति हो गयी ।

अब प्रश्न यह है कि इस साधनाके लिये भगवान्की मूर्तिका ही अवलम्बन क्यों लिया जाय ? यह साधना तो एक फूल—ज्योति अथवा किसी अन्य वस्तुको लेकर

अथवा जिसमें प्रियताका भाव हो, हो सकती है। किंतु यहाँ भगवान्‌की मूर्ति सामने होनेसे भगवान्‌के साथ भगवान्‌के सद्‌गुणोंका भी ध्यान होता है, जिससे वे सब गुण हमारे अंदर आ जाते हैं। भगवान्‌का दर्शन करनेके लिये भगवान् होना पड़ता है,—'टू सी गॉड टू बी गॉड (To see God to be God)' भगवान्‌के गुणोंके कारण उसमें ध्यान और भी सहज तरीकेसे लग जाता है।

एक व्यक्तिने शङ्का की कि मेरा गुरुमूर्तिके अंदर ध्यान नहीं लगता है। किसी विचारवान् व्यक्तिने उसकी आसक्तिको दृष्टिमें रख, उसे सलाह दी कि मूर्तिके पीछे हजार-हजारके नोट चिपका दो, देखो, फिर ध्यान लगता है या नहीं ? कारण कि जब उसमें महत्त्वबुद्धि हो जाती है, तो ध्यान स्वतः ही लगता है। भगवान्‌के गुणोंका चिन्तन उसमें महत्त्वबुद्धि उत्पन्न करता है एवं जब उसमें महत्त्वबुद्धि हो जाती है, तो मन उसमें अपने-आप ही लग जाता है, लगाना नहीं पड़ता। फिर वह संसारी कल्पनासे खाली हो जाता है, जिससे उसकी भीतरकी चेतना जाग्रत् हो जाती है और ऐसा होनेपर बजाय मूर्तिमें भगवान्‌के दर्शनके स्वयंमें ही भगवान्‌के दर्शन हो जाते हैं।

जीवन-दान देने हनुमान्‌जी क्यों आयें ?

(लेखक—प्रा० श्रीधर्मवीरजी)

ध्रुवदेव, उनकी पत्नी सत्यबाला और उनकी चार वर्षीय बच्ची व्रजबाला मन्दिरमें भगवान् श्रीकृष्णके दर्शन करनेके पश्चात् घर लौट रहे थे। मैं और मेरी बेटी काननकिशोरी, उनके साथ थे। व्रजबालाको मैंने गोदमें उठा रक्खा था। परंतु वह मेरी गोदसे उतरकर सड़कपर चलना चाहती थी। सड़कपर ट्रैफिक अधिक न थी। पाँच-दस मिनटके बाद कोई मोटर आ जाती और निकल जाती। साइकिल और रिक्सा आ-जा रहे थे। मुझे डर लग रहा था कि कहीं छोटी बच्ची व्रजबालाकी साइकिल या रिक्सासे टक्कर न हो जाय। इसलिये मैंने उसे उतार तो दिया, परंतु मैं उसके पीछे-पीछे चलने लगा। उसके माता-पिताने यह देखा तो उन्हें विचार आया कि उनकी लड़की मुझे मुफ्तमें परेशान कर रही है। परंतु यह बात गलत थी। मुझे कोई परेशानी न हो रही थी। हाँ, मैं इस बातसे डर रहा था कि कहीं बच्ची व्रजबालाको चोट न आ जाय।

थोड़ी देर बाद वही हुआ, जिसका मुझे भय था। एक साइकिल-स्कूटर आया। उसकी फट-फटके कारण बच्चीका ध्यान उधर चला गया। उसने मुँह मोड़ा तो स्कूटर उसके सिरपर खड़ा था। वह घबरा गयी। इसके पूर्व कि मैं उसे पकड़ सकूँ, उसका शरीर स्कूटरके सामने चला गया। मेरे देखते-देखते व्रजबाला भूमिपर गिर पड़ी और दो क्षणमें स्कूटर उसके शरीरके ऊपरसे गुजर गया। मेरे मुँहसे चीख निकली। उधरसे ध्रुवदेव और सत्यबाला दौड़े-दौड़े आये। काननकिशोरी भी लपककर पहुँची, परंतु छोटी बच्ची तो संज्ञाहीन हो चुकी थी। सम्भवतः शोक या आघातने ही उसे बेहोश कर दिया था।

मैंने ध्यानसे देखा तो उसके मुँहसे खून निकल रहा था। स्कूटरका पहिया उसके शरीरपरसे गुजर गया था। कोई नाड़ी फट जानेसे रक्त मुँहके रास्तेसे निकल रहा था। स्कूटरवालेने यह देखा तो हैरान रह गया। वह घबराया भी। उसने स्कूटरको कुछ ही क्षणोंके

लिये खड़ा किया। हम चाहते थे कि वह उसे किसी डॉक्टर या अस्पतालमें ले चले। लेकिन शायद वह डर रहा था कि मैं तो आज फँस जाऊँगा। इस कारण उसने हमको धोखा देनेके लिये कहा, 'बहुत अच्छा, ले चलता हूँ इसे।' लेकिन ले जानेके बजाय वह चल पड़ा और यह जा, वह जा। हो गया गुम। हम उसके स्कूटरका नम्बर भी न देख सके। खेद हुआ कि कमबख्तके अंदर इतनी मानवता भी नहीं कि घायल-बेहोश बच्चीकी यह ऐसी छोटी-सी सहायता कर देता।

परंतु खेद करनेसे तो कुछ बन नहीं सकता। फिर इसके लिये समय भी तो न था। हम तो देख रहे थे कि बच्ची बेहोश है और उसका रक्त बहना बंद नहीं हो रहा है। थोड़ी देर बाद एक रिक्सा उधरसे गुजरा, उसमें एक आदमी बैठा था। मैंने भगवान्‌से प्रार्थना की—'**पाहि मां कृपया देव शरणागतवत्सल।**' (हे शरणागतके प्यारे भगवान्! तुम मेरी रक्षा करो।) अब उधरसे एक टैक्सी निकली। उसे हाथ देकर खड़ा किया। सभी उसमें बैठ गये। उसे तिलक अस्पताल चलनेको कहा।

सात मिनटमें ही हम वहाँ पहुँच गये। सौभाग्यसे वहाँ एक सुयोग्य डाक्टर मिल गये। डा० वीरेन्द्रने पहले बच्चीकी नब्ज और फिर स्टैकिस्कोप लगाकर हृदय देखा। नब्ज उसके हाथमें थी, वह बहुत मन्द चल रही थी, लेकिन दिलकी धड़कन भी तो बहुत मध्यम थी। डाक्टरके मुखका अध्ययन करनेपर मुझे अनुभव हुआ कि वह निराश है। उसने कहा भी—'आप देरसे बच्चीको लाये हैं।' मेरी तरह शेषने भी इसका अर्थ यह समझा कि बच्चीके बचनेकी आशा नहीं। तो भी डाक्टरने बच्चीको मेजपर लिटाकर एक इंजेक्शन लगाया। इसके पश्चात् वह धीरे-धीरे बच्चीके सीनेपर मालिश करने लगा। एक बार उसे अनुभव हुआ कि अब हृदय अपना काम नियमपूर्वक करने लगा है।

थोड़ी देर बाद उसने नाड़ीकी परीक्षा की। अब उसने कहा—'यदि आप कुछ और करना चाहते हैं तो कर लें। यह कष्ट मेरे बसका नहीं रहा।' सभीकी आँखोंसे आँसू जारी हो गये। डाक्टरकी निराशाने सभीकी आशा तोड़ दी। मैंने काननकिशोरीसे कहा—'आओ, बैठकर हम प्रीतमसे कहते हैं।' छोटी लड़कीके माता-पिता भी बैठ गये। मैंने भजन गाया—

'तू ही कृपाल, आश्रय तेरे ही चरनोंका है।
करो जो चाहो, तुझे छोड़ जा कहाँ सकते हैं॥'

सभीकी आँखोंसे आँसुओंकी झड़ी लग गयी। यह झड़ी चलती रही, चलती ही रही। पाँच मिनट हो गये, दस मिनट भी हो गये। अब उधरसे डॉक्टर वीरेन्द्र आये। उन्होंने कहा—'बच्चीने आँखें खोल दी हैं। उसने पानी माँगा है।' हमने ये शब्द सुने तो आँखोंके कटोरे और अधिक उछले। आँसू छलकने लगे। परंतु ये अश्रु कृतज्ञताके थे। हमने अपने प्रियतम कृष्णका धन्यवाद किया और बच्चीके निकट पहुँचे। उसने अपनी माँको तुरंत पहचान लिया।

उसे भूख लग रही थी। उसे फलोंका रस दिया गया। थोड़ी देर बाद ग्लूकोज डालकर गरम-गरम दूध दिया गया। बच्ची बच गयी। उसे मोटरमें डालकर हम घर ले आये। घर पहुँचकर हम प्रीतमका धन्यवाद करनेके लिये पूजा-गृहमें गये। भजन शुरू हुए तो कानन-किशोरीको भक्तराज हनुमान्‌ने दर्शन दिये। वे मुस्करा रहे थे। उनका तेज सहन नहीं हो रहा था, इसका अर्थ स्पष्ट था। हनुमान्‌जीने एक प्रकारसे कहा—बच्ची ठीक हो गयी है न ?

परंतु यह बात काननकिशोरीने मुझे बादमें बतायी। मेरे लिये अब यह समस्या बनी हुई है—'हम तो कृष्ण-भक्त हैं। हनुमान्‌जीने कैसे दर्शन दिये ? हनुमान्‌जी उसे बचाने कैसे आये ?'

इस आशयका पत्र योगी श्रीकृष्णप्रेमके पास पहुँचा तो

वे हँस दिये। उन्होंने उत्तर दिया—'यह घटना अयोध्याकी है। भक्ति-भावसे भजन करनेपर भगवान्‌की शक्तिका कोई रूप प्रकट हो सकता है। उसीने बच्चीको जीवन-दान दिया। शेष रही यह बात कि श्रीरामके भक्त-प्रवर हनुमान्‌जी क्यों प्रकट हुए? श्रीकृष्ण-का कोई भक्त क्यों न प्रकट हुआ? उत्तर स्पष्ट है—श्रीराम हों या श्रीकृष्ण, बात एक ही है। किसी एकके भजन करनेका अर्थ है सभी नामोंका भजन करना। मुझे पता नहीं कि इस उत्तरसे आपको संतोष होता है या नहीं। यदि नहीं हुआ तो मैं कहूँगा कि आप गायत्रीके इस भागपर विचार कीजिये—'धियो यो नः प्रचोदयात्' (वे ही हमारी बुद्धियोंको प्रेरित करते हैं)।"

दीनकी प्रार्थना

मेरे मनके धन तुम ही हो, तुम ही मेरे तनके श्वास।
आश्रय एक भरोसा तुम ही, तुम ही एकमात्र विश्वास॥
मैं अति दीन सर्वथा सब विधि, हूँ अयोग्य असमर्थ मलीन।
नहीं तनिक बल-पौरुष, आश्रय अन्य नहीं, सब साधन-हीन॥
नहीं जानता भुक्ति-मुक्ति मैं, नहीं जानता है क्या बन्ध।
एक तुम्हारे सिवा कहीं भी, मेरा रह न गया सम्बन्ध॥
नहीं जानता तुम कैसे हो, क्या हो, नहीं जानता तत्त्व।
'तुम मेरे हो, मेरे ही' बस, तुमसे ही मेरा अपनत्व॥
दीनोंको आदर देने, उनको अपनानेका नित चाव—
रहता तुम्हें, तुम्हारा ऐसा सहज विलक्षण मृदु-स्वभाव॥
इस ही निज स्वभाववश तुम दौड़े आते दीनोंके द्वार।
उन्हें उठाकर गले लगाते, करते उन्हें स्व-जन स्वीकार॥
जैसे शिशु मलभरा, न धो सकता गंदा मल किसी प्रकार।
नहीं जानता, मल भी क्या है, केवल माँको रहा पुकार॥
शिशुकी करुण पुकार सहज सुन, स्नेहमयी माँ आ तत्काल।
मल धो-पोंछ स्व-कर, कर देती स्तन्य-सुधा दे उसे निहाल॥
वैसे ही तुम आकर उसके हरते पाप-ताप त्रयशूल।
हृदय लगा उल्लास भरे मुख, देते स्नेह-सुधा सुखमूल॥
करते उसे परम पावन तुम, पूजनीय सबका सब ठौर।
धन्य तुम्हारी दीनबन्धुता! धन्य स्वभाव सकल सिरमौर!!
तब भी मानव दीन न बनता, नहीं छोड़ता वह अभिमान।
इसीलिये वञ्चित रह जाता, कृपासुधासे कृपानिधान!॥
पूर्ण दैन्यका भाव जगा दो, पूर्ण बना दो अज्ञ अमान।
मातृपरायण शिशु-सा उसे बना दो करुणाकर भगवान॥
जिससे वह पा जाये सहज कृपामृतसागरका संधान।
डूबा उसमें रहे निरन्तर, करता रहे सदा रसपान॥

बाधानाशक नवग्रह-यन्त्र

(संकलनकर्ता—पं० श्रीरामस्वरूपजी शास्त्री, 'अमर' पुराणेतिहासाचार्य)

लोक और परलोक विदित असत्कर्मोंके प्रभावसे और तदनुसार नवग्रहोंकी दृष्टिसे संसारमें मानवोंको अनिष्टकी उपलब्धि होती है। उसी ग्रह-अनिष्ट-व्यथाके निवारणार्थ नीचे नवग्रह-यन्त्र और सर्वरोगहरण 'यन्त्र' कल्याणप्रेमियों-के लाभार्थ शास्त्रीय-सद्ग्रन्थोंसे सपरिश्रम अन्वेषण करके लोकोपकार-हेतु लिखे जा रहे हैं। इन यन्त्रोंको अष्टगन्धसे भोजपत्रपर लिखकर सोने, चाँदी अथवा ताँबेके ताबीजमें पूजा करके भर दें। जो ग्रह अनिष्टकारक हो, उसीका यन्त्र बनाकर गलेमें अथवा हाथकी दाहिनी भुजामें, स्त्रीकी बायीं भुजामें; लाल डोरे (धागे) से बाँधनेपर यन्त्र रक्षाका कार्य निःसंदेह करता है। केवल शनिग्रहका यन्त्र काले डोरे (धागे) से बाँधना चाहिये। शेष आठ ग्रहोंके यन्त्र लाल धागे-से ही बाँधे जाते हैं।

अष्टगन्ध बनानेकी विधि

असली केसर, असली कस्तूरी, असली कपूर, काला अगर, गोरोचन, हस्तिमद, श्वेतचन्दन और लालचन्दन—इन आठ वस्तुओंको पीसकर गोली बना ले और इनका सर्वदा यन्त्र आदिपर प्रयोग करना श्रेयस्कर है।

नवग्रह-यन्त्र

(१) सूर्यग्रहका यन्त्र

६	१	८
७	५	३
२	९	४

(२) चन्द्रग्रहका यन्त्र

७	२	९
८	६	४
३	१०	५

(३) मङ्गलग्रहका यन्त्र

८	३	१०
९	७	५
४	११	६

(४) बुधग्रहका यन्त्र

९	४	११
१०	८	६
५	१२	७

(५) बृहस्पतिग्रहका यन्त्र

१०	५	१२
११	९	७
६	१३	८

(६) शुक्रग्रहका यन्त्र

११	६	१३
१२	१०	८
७	१४	९

(७) शनिग्रहका यन्त्र

१२	७	१४
१३	११	९
८	१५	१०

(८) राहुग्रहका यन्त्र

१३	८	१५
१४	१२	१०
९	१६	११

(९) केतुग्रहका यन्त्र

१४	९	१६
१५	१३	११
१०	१७	१२

सर्वरोगहर यन्त्र

		१		
	२		६	
३				७
	४		८	
		९		

इस यन्त्रको सर्वरोग हरनेके लिये भोजपत्रपर अष्टगन्धसे बनाकर उपर्युक्त विधिसे बाँधना चाहिये। इन यन्त्रोंके उपयोग करनेवाले जिन सज्जनोंको लाभ हो, वे सूचित करें। इसके अनन्तर अन्य यन्त्र लिखे जा सकते हैं।

भारतीय संस्कृतिकी दिग्विजय-यात्रा

(लेखक—श्रीभगवानशरणजी भारद्वाज 'प्रदीप')

भारत मानव-संस्कृतिका जनक, प्रसारक एवं संरक्षक है। इसीने सम्पूर्ण संसारको मानवताकी दीक्षा दी। भारत ही मानव-जातिका आदि उद्भव-स्थल है। जगद्गुरु भारतके ही यशस्वी पुत्रोंने इस देशकी भौगोलिक सीमाओंसे बाहर जाकर भिन्न-भिन्न राज्योंकी संस्थापना की और शासन-तन्त्रका प्रवर्तन और संचालन किया। जब भी विश्वका इतिहास सभ्यता-संस्कृतिके प्राचीनतम स्वरूपका उद्घाटन करने लगता है, तब विचारक यह देखकर विस्मित हो उठते हैं कि प्राचीनतम मानव-संस्कृतिका मेरुदण्ड और स्नायु-जाल भारतद्वारा प्रदत्त है।

चीन

सर डब्ल्यू० जोन्सके अनुसार चीनियोंकी उत्पत्ति हिंदुओंसे हुई है। चीनके प्रसिद्ध इतिहासविद् ओकाकुशने भी इसी मतका समर्थन करते हुए लिखा है कि चीनके लोपाङ्ग प्रान्तमें किसी समय दस हजार हिंदू-प्रचारक रहते थे। चीनी धर्मशास्त्र 'चोकिंग'के अनुसार ईसासे २९०० वर्ष पूर्व भारतके काश्मीर, पंजाब आदि प्रान्तोंसे गये कुछ हिंदुओंने चीनकी नींव डाली। इससे मिलता-जुलता वर्णन 'महाभारत'में भी है। ह्वेनसांगको कामरूपके शासक भास्कर वर्मनने आसामका एक मानचित्र भेंट किया था, जिसमें नेफा तो भारतके भू-भागके रूपमें अङ्कित किया ही गया था, चीनका पर्याप्त भूखण्ड भी भारतीय भूभागके रूपमें प्रदर्शित किया गया था। चीनकी वर्ण-व्यवस्था, निसर्गपूजक धर्म-व्यवस्था, श्राद्ध-प्रथा, संयुक्त परिवार-प्रथा एवं ताओ मतमें योगासनों और मन्त्र-तन्त्रोंका प्रचलन—स्पष्टरूपसे चीनपर भारतके सांस्कृतिक ऋणका प्रमाण प्रस्तुत करते हैं।

जापान

जापानके प्रतिष्ठित विद्वान् तकाकसूने स्वयं स्वीकार किया है कि जापानी संस्कृतिका भवन भारतीय संस्कृतिकी आधार-शिलापर अवस्थित है। जापानियोंने नारामें एक भारतीय विद्वान् बुद्धिसेन भारद्वाजकी स्मृतिमें एक मन्दिरका निर्माण कराया। बुद्धिसेन कुछ साथियोंको लेकर ओस्कामें धर्मप्रचारार्थ गये और इसी महत्कार्यमें सारा जीवन लगा दिया। अनेक विद्वानोंकी धारणा है कि चन्द्रवंशी क्षत्रियोंने जापानमें सर्वप्रथम शासन किया। जापानकी उपासना-पद्धति और धार्मिक मान्यताओंपर हिंदू-धर्मकी स्पष्ट छाप है। जापान दीपावली-पर्व मनाता है और भारतीयोंके समान श्राद्धद्वारा पूर्वजोंके प्रति कृतज्ञता ज्ञापन करता है।

यूनान और मिस्र

ऐसे संकेत मिलते हैं कि ई० पू० ४६९–३९९में भारतीय दार्शनिक यूनान आया-जाया करते थे। श्रीपोकाकने 'इण्डिया इन ग्रीस'में लिखा है कि 'यूनानके मूल निवासी क्षत्रिय थे। मगध और सिन्धुतट-निवासी क्षत्रियोंने यूनान बसाया था।' रूसी विद्वान् कर्नल अल्काट मानते हैं कि 'हिंदुओंने ही आठ हजार वर्ष पूर्व मिस्री सभ्यताकी प्राण-प्रतिष्ठा की थी।' यूनानके लोग निसर्गपूजक थे और 'अलअमरना'के उत्खननसे पता चलता है कि मिस्री लोग गौ और सूर्यके पूजक थे। डॉ० प्राणनाथने शोधके बाद निष्कर्ष निकाला है कि 'मिस्रमें संस्कृत राज्यभाषा थी। वहाँकी भाषामें संस्कृतके सहस्रों शब्द उपलब्ध होते हैं। वहाँके मन्दिरोंकी रचनाशैली भारतके सूर्य-मन्दिरोंके समान है। हिंदू देवताओंके नामोंको ईषत् परिवर्तनके साथ मिस्री जनताने ग्रहण किया था।' भविष्यपुराणमें उल्लेख है कि 'महर्षि कण्व मिस्र गये थे और उन्होंने वहाँ दस सहस्र व्यक्तियोंको दीक्षा दी थी।'

रोम और सुमेर

रोममें विवाह भारतकी तरह वेदीकी प्रदक्षिणा करके सम्पन्न होता था। भारतकी तरह रोममें शवदाहका प्रचलन था और चार दिनोंतक मरण-सूतक रहता था। भारत अकेले वहींसे साढ़े पाँच करोड़की विदेशी मुद्रा अर्जित करता था।

गार्डन चाइल्डने 'न्यू लाइट ऑन दि मोस्ट एंशिएण्ट ईस्ट' में सिंधु-सभ्यताको सुमेरी सभ्यताका मूल स्रोत घोषित किया है। लियोनार्ड वूली भी नृतत्त्वशास्त्रीय अनुसंधानके आधारपर इसी निष्कर्षपर पहुँचे हैं। सर जॉन मार्शलकी धारणा है कि मोहन-जो-दारो और हरप्पाकी सभ्यता विकास-कोटिपर आरूढ़ हैं, प्रारम्भिक नहीं।

ईरान-अफगानिस्तान

ईरानकी स्थापना असंदिग्धरूपसे भारतीयोंने ही की थी। जेन्दावेस्ताका नामकरण अथर्ववेदके आधारपर किया गया। 'जेन्द' छन्दका और 'अवेस्ता' वेदका रूपान्तर प्रतीत होता है। जेन्द भाषाके दसमें सात शब्द शुद्ध संस्कृतके मिलते हैं। डॉ० तारापुरवालाके अनुसार गाथा एवं ऋग्वेदमें भाषागत एवं भावगत साम्य बड़ी मात्रामें मिलता है। ईरानी लोग गौ और अग्निके उपासक एवं पुनर्जन्मके विश्वासी होते हैं। यज्ञोपवीत ('कुश्ती') का प्रचलन है। ईरानी समाज-व्यवस्थापर भारतीय वर्ण-व्यवस्थाकी स्पष्ट छाप है।

हुएनसांगने लिखा है कि ६३० ई०में क्षत्रिय गांधारपर शासन करते थे। कुछ लोग अफगानिस्तानको महावैयाकरण पाणिनिकी जन्म-भूमि मानते हैं। पश्तो और संस्कृतका घनिष्ठ सम्बन्ध बताया जाता है। काबुलमें बाईस मन्दिर हैं। इसके अतिरिक्त वैरागी, उदासी, नाथ और संन्यासियोंके मठ भी हैं।

अफ्रीका

एक यूरोपीय महिला सुश्री सारालैटनने अफ्रीकाके घने जंगलों और दलदली क्षेत्रोंमें जाकर पता लगाया कि अफ्रीकी भाषाओंमें संस्कृत शब्द पाये जाते हैं। उनके एक देवताकी, जिसके आगे अफ्रीकी लोग कीर्तन-हवन करते हैं, आकृति गोपाल-कृष्णसे बहुत साम्य रखती है। ह्यूगो ओवरमीरने एक पुस्तकमें अफ्रीकाके देवी-देवताओंके चित्र प्रकाशित किये हैं। चादर ओढ़े हुए और पगड़ी बाँधे पुजारी, हजार सींगोंवाला वृषभ, जल-वृष्टि करता हाथी और बैल—हिंदू-मान्यताओंके प्रभावका साक्ष्य प्रस्तुत कर रहे हैं।

साइबेरिया-मंगोलिया

साइबेरियाके मन्दिरोंमें महाकालका स्तवन संस्कृत श्लोकोंमें अब भी होता है। वहाँके मन्दिर और मूर्तियाँ हिंदुत्वसे प्रभावित हैं। मंगोलियानिवासी अपने गृह-द्वार स्वस्तिक, कलश, पद्म और शङ्ख-चक्रसे समलंकृत करते हैं। वहाँके मन्दिरोंमें देव-प्रतिमाओंके समक्ष घृतदीप जलाया जाता है और धूप-बत्ती जलाकर पूजा की जाती है।

जर्मनी

गत शताब्दीके आरम्भमें कुछ जर्मन विद्वानोंने ही सिद्ध करना चाहा कि जर्मन शब्द 'शर्मण्य' का अपभ्रंश है। विद्वानोंका कथन है कि भारतके कुछ ब्राह्मण-परिवार यहाँ आये और उन्होंने इस भूखण्डका नामकरण किया। आज भी जर्मन मनीषियोंके मानस-जगत्‌पर भारत छाया हुआ है। जर्मन विद्वानोंने केवल वेद, उपनिषद्, गीता, रामायण, महाभारत आदि देववाणी-वाङ्मयका परिशीलन ही नहीं किया अपितु भारतीय दर्शन, भाषाविज्ञान, पत्रकारिता, कोशकला आदिके क्षेत्रमें भी उल्लेखनीय योगदान दिया। वहाँ ग्यारह विश्वविद्यालयोंमें भारतीय भाषाओंके अध्ययन-अन्वेषणकी व्यवस्था है। योग सिखानेके लिये पचास पञ्जीकृत पाठशालाएँ चलती हैं। जर्मन महिलाएँ भारतीय वेश-विन्यास बहुत पसंद करती हैं।

रूस

श्रीमती वोलकोवाके अनुसार रूसी भाषाओंकी जननी संस्कृत है। रूसके भाषा-शास्त्री ले० वी० मकारैको रूसीको अंग्रेजीकी अपेक्षा बंगला, हिंदी एवं संस्कृतके निकट मानते हैं। हिंदीकी शिक्षा वहाँ अनिवार्य है। योगासनोंके प्रति रूसी जनतामें गहरा आकर्षण है। रूस-प्रवासमें स्वामी प्रणवानन्द सरस्वतीके योगविषयक व्याख्यान सुननेके लिये भीषण शीतमें भी जनता भारी मात्रामें उपस्थित रहती थी। पिकिलिंगसने 'प्राचीन भारतीय और लिथुआनियन भाषाएँ और संस्कृतसे निकट सम्बन्ध' में, ए० एफ० गिल्फेर्दिंवने 'स्लाव और संस्कृत भाषाकी आत्मीयता' में, ए० पी० मिकुत्स्कीने 'संस्कृत धातुओं और शब्दोंकी स्लाविकसे तुलना' में और रूसी विज्ञान अकादमीने 'संस्कृत और रूसीकी समानता' नामक १८११ई०में प्रकाशित ग्रन्थमें भाषाई क्षेत्रमें रूसी-पर संस्कृतका ऋण घोषित किया है। गीता, रामायण, हरिवंशपुराण, छान्दोग्योपनिषद्, बृहदारण्यकोपनिषद्, हितोपदेश, पञ्चतन्त्र, मुद्राराक्षस आदि भारतीय ग्रन्थोंका अनुवाद वहाँ बहुत लोकप्रिय हुआ है। वाराञ्निकोवने 'रामचरितमानस' और उनकी पत्नी सरस्वतीने यशपालकी 'दिव्या' का रूसी भाषामें अनुवाद किया है। संस्कृतके

अनेक नाटक वहाँ अभिनीत हुए हैं। विश्वकविकी कृतियाँ रूसकी चौंतीस भाषाओंमें अनूदित हुई हैं।

अमेरिका

अमेरिकाके प्रसिद्ध तत्त्वज्ञ विलड्यूरेष्ट कहते हैं कि 'भारत-भूमि हमारी जातिकी माता थी और संस्कृत यूरोपीय भाषाओंकी। वह हमारे दर्शनकी माता है, अरबोंके माध्यमसे हमारे अधिकांश गणितकी माता है, बुद्धके द्वारा ईसाई-धर्ममें निहित आदर्शोंकी माता है, ग्राम-समुदायोंद्वारा स्वायत्त शासन और प्रजातन्त्रकी जननी है। भारतमाता अनेक प्रकारसे हमारी जन्मदात्री है।'

विद्वानोंका अभिमत है कि अमेरिकाकी स्थापना सूर्यवंशी नरेशोंने की और भारतीयोंद्वारा वहाँ विवाह-सम्बन्ध स्थापित किये जानेके उल्लेख 'महाभारत' आदिमें प्राप्त होते हैं। कई स्थानोंपर सूर्य-मन्दिर हैं। भारतीय साहित्य, दर्शन, कला, भाषा, धर्म आदिमें वहाँके विद्वानोंमें बड़ी अभिरुचि है। भारतीय योगासनोंकी लोकप्रियता वहाँ दिन-पर-दिन बढ़ रही है।

तिब्बत

तिब्बतका पहला शासक कोसलराज प्रसेनजितका पुत्र था। तिब्बतकी लिपि संस्कृतपर आधारित है। अब भी नागरी अक्षरोंका प्रचलन है। यहाँ गणेश, इन्द्र, काली, यम, गरुड आदिकी उपासना प्रचलित रही है। दीपोत्सव मनाया जाता है। तिब्बती विवाह-पद्धति हिंदू-प्रणालीसे मिलती-जुलती है।

बृहत्तर भारत

प्रथम शताब्दीसे पूर्व ही मलयमें हिंदू पहुँच गये थे। मलयकी राज्य-भाषा संस्कृत थी और लिपि देवनागरी। हर घरमें अगस्त्य मुनिकी पूजा होती है। यहाँकी शासन-व्यवस्थाका आधार मनुस्मृति थी। ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदिकी आराधना होती थी। गुरुकुल-पद्धति प्रचलित थी।

४०० ई०में सुमात्रामें श्रीविजय नामक हिंदूसाम्राज्य-की स्थापना हो चुकी थी। इस राजवंशने छः सौ वर्ष शासन किया। ईसाकी पहली शताब्दीमें बोर्नियोमें हिंदूराज्य स्थापित हो चुका था और चौदहवीं शतीतक हिंदुओंने यहाँ शासन किया।

एच० एल० मिलने 'इण्टरनेशनल ज्यॉग्रफी' में स्पष्ट लिखा है कि 'जावानिवासियोंमें हिंदू रक्तका अंश है। जावी भाषाकी निजी लिपि है; किंतु उसका उद्‍गम भारतसे ही हुआ। वह ब्राह्मण-धर्मसे प्रभावित है।' अगस्त्य यहाँ भी बहुत समादृत हैं। रामकथा यहाँ अतीव लोकप्रिय है। यहाँ महाभारतपर आधारित नाटक बड़ी रुचिसे देखे जाते हैं। यहाँ संस्कृतमें उत्कीर्ण अनेक अभिलेख उपलब्ध हुए हैं। शिव, विष्णु आदिके मन्दिर अब भी हैं।

स्यामके जन-जीवनमें इन्द्र बहुत जनप्रिय हैं। भारतके नगरों एवं स्थानोंके नामपर यहाँ स्थानों एवं व्यक्तियोंका नामकरण किया गया है। स्याम (थाइलैण्ड) में रामायण और महाभारत बहुत लोकप्रिय हैं। यहाँकी मूर्तिकलापर गुप्तकलाका प्रभाव बताया जाता है। यहाँके उच्च-न्यायालयके सामने गङ्गाधर महादेव और आकाश-वाणी-केन्द्रके मुख्यद्वारपर वीणापाणिकी मूर्ति प्रतिष्ठित है। यहाँकी भाषापर संस्कृतका गहरा प्रभाव है।

बालीके विषयमें 'बृहत्तर भारतमें हिंदू-सभ्यता' के लेखक स्वामी सदानन्दका यह मन्तव्य ही पर्याप्त है कि 'बाली द्वीपमें हिंदू-धर्म जिस पवित्रताके साथ जी रहा है, उस पवित्रताके साथ वह अब भारतमें भी नहीं है।'

कम्बुजमें प्रथम शताब्दीमें हिंदूराज्य स्थापित हुआ। रामायण-महाभारतके प्रति निष्ठा, विष्णु, शिव, हनुमान् आदिके मन्दिर, हिंदुओं-जैसे नाम और संस्कार, संस्कृतका राजभाषात्व उसे 'दूसरे भारत' की संज्ञा देनेको विवश करते हैं।



प्रपत्तिकी झलक

(लेखक—प्राचार्य श्रीजयनारायणजी मल्लिक, एम्० ए० (द्वय) स्वर्णपदक-प्राप्त, साहित्याचार्य, साहित्यालंकार, डिप० एड०)

प्रपत्ति भगवान्से मिलनेका सर्वोत्तम साधन है। इसीका दूसरा नाम 'शरणागति' है। वैसे तो अधिकारी-भेदसे कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग—तीनों मोक्षपथ हैं, पर 'प्रपत्ति' सबसे सुगम और आनन्दप्रद है। इसमें स्त्री तथा शूद्र सभीका अधिकार है। जो सब तरहसे गरीब, अकिंचन और निःसहाय हैं, जिनके पास न धन है, न बल है, न विद्या है, न ऊँची जाति है, न शास्त्रादि पढ़नेका अधिकार और योग्यता है, जिन्हें संसारने 'पतित' कहकर ठुकरा दिया है, उनके लिये तो केवल शरणागतिका ही एकमात्र मार्ग है। भगवान्की शरणागतिमें सबका अधिकार है। कर्म, ज्ञान और भक्तिके मार्ग भले ही कभी विफल हो जायँ या उलझनमें डाल दें, पर प्रपत्तिके मार्गमें सफलता निश्चित है। कर्मयोग, ज्ञानयोग एवं भक्तियोगमें मनुष्यको स्वतः प्रयास करना पड़ता है, अतः सफलता संदिग्ध हो जाती है; क्योंकि मनुष्य कमजोरीका पुतला है और प्रलोभनमें पड़कर वह भूल कर बैठता है। प्रपत्तिमें भगवान्के ऊपर मनुष्य अपना भार सौंप देता है। वह आर्त्त और निःसहाय होकर सोचता है कि 'अपने बलपर मोक्ष पाना दुर्लभ है, अतः भगवान्की प्राप्तिमें भगवान् ही उपाय हैं।' वह अपनेको अनन्त अपराधी समझकर अत्यन्त दीन-हीनभावसे भगवान्के शरणागत हो जाता है और अपनेको उनके श्रीचरणोंमें सौंप देता है। तबसे पत्नीकी रक्षाके लिये पतिकी तरह प्रपन्नकी रक्षाका भार परमात्माका हो जाता है। स्वामीकी तरह परमात्मा उसे जिस अवस्थामें रक्खें, प्रपन्नका पत्नीकी तरह केवल एक ही कर्तव्य रह जाता है—स्वामीका कैंकर्य करना। प्रपन्नके जीवनका स्वरूप ही भगवत्कैंकर्य है। संसारके सारे कर्मोंको वह भगवत्कैंकर्य ही समझकर करता है। भगवान् उसे जिस परिस्थितिमें रखते हैं, उस परिस्थितिके अनुकूल आचरण उसका कर्तव्य हो जाता है। किसानके लिये हल जोतना, माताके लिये बच्चोंका लालन-पालन, शिक्षकके लिये पढ़ाना, कलाकारके लिये कलाकी कृति—सब कुछ भगवत्कैंकर्य है। केवल स्वार्थ तथा भोग-वासनासे प्रेरित होकर कर्म नहीं करना, कर्तव्यकी प्रेरणासे 'भगवत्सेवा' समझकर कर्म करना। प्रपन्न समझता है कि 'सब जीव हैं भगवत्स्वरूप।'

सीय राममय सब जग जानी।

'ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।'

वस्तुतः जीवात्मा परमात्माका अंश है और प्रत्येक नर-नारीके शरीरमें वह जीवात्मा वर्तमान है। अतः प्रत्येक नर-नारीका शरीर परमात्माका मन्दिर हुआ। अन्तर्यामी भगवान् सर्वत्र एवं सभी प्राणियोंमें वर्तमान हैं। ऐसा कोई भी एकान्त स्थल नहीं है, जहाँ मनुष्य छिपकर पाप कर सके। एकान्त स्थलमें छिपकर पाप करनेवाला अन्तर्यामी भगवान्की अवहेलना करता है। मानव-शरीर परमात्माका मन्दिर है, अतः मानवताकी सेवा भगवत्कैंकर्य है। किसीकी निन्दा करना, किसीकी बुराई सोचना, किसीको कष्ट देना अन्तर्यामी भगवान्की अवहेलनामात्र है। भगवान् विश्वरूप हैं और चित् तथा अचित्से बना हुआ संसार उनका शरीर है। संसार भ्रम नहीं है। परमात्माकी विभूति है। 'ईशावास्यमिदं सर्वम्' परमात्माकी ज्योति सर्वत्र फैली हुई है, अतः संसार मिथ्या नहीं है। संसारके सभी पदार्थ ब्रह्ममय हैं। अतः किसीको घृणा और अपमानकी दृष्टिसे देखना, किसीका दिल दुखाना भगवान्का अनादर है। परिवारकी सेवा, राष्ट्रकी सेवा, गरीब-दुखियोंके कष्टको दूर करना, मानवताकी सेवा अन्तर्यामी भगवान्का कैंकर्य है। देवता बलिदान चाहता है। मानवताके अन्तर्गत जो 'पशुता' घुस गयी है, वह उसे ऊपर उठने नहीं देती, उल्टे उसे भोग-वासनाकी ओर घसीटती है।' हमें उसी 'पशुता'का बलिदान करना है। देवताके सामने निरीह पशुका बलिदान करना नहीं है, हमारे अन्तस्तलमें जो प्रबल पशुता और दानवता घुस गयी है, उसीका बलिदान करना है। पशुता और दानवताका हनन कर मानवताको पवित्र और निर्मल बनाना 'भगवत्कैंकर्य' है। कर्मयोगके लिये निर्लिप्त, निष्काम और अनासक्त होना आवश्यक है। कर्म करनेपर भी अन्तःकरणमें कोई हलचल न हो, अन्तरात्मापर कर्म-संस्कारका प्रतिबिम्ब न पड़े। यह होगा कैसे? निर्लिप्त होकर कर्म करना, भोग-वासनाको कोई भोजन न देना कर्मयोगकी एक बहुत बड़ी समस्या है, जिसका समाधान कठिन है। कोरे उपदेश देनेसे और उपनिषदोंके पन्ने चाट जानेसे आचरणकी समस्या हल नहीं होती। विद्या

पढ़कर हम शास्त्रार्थमें विजयी भले ही हो जायँ, बाहरी वेष-भूषा, पूजा-पाठ और नेतागिरीसे संसार हमारा आदर भले ही करने लगे, पर हृदयमें तो वासना-सर्पिणी फुफकार मारती रहती है और विषयकी सामग्री समीप आनेपर महात्माजीको नचाना शुरू कर देती है। तब दुर्बल मानवता क्या करे ? वह मायाके चंगुलसे कैसे छूटे ? यहीं प्रपत्ति आकर सहायता करती है।

ज्ञानयोग तो कर्मयोगसे भी कठिन है। ज्ञानयोगके लिये स्थितप्रज्ञ होना आवश्यक है। पर प्रज्ञा (बुद्धि) तबतक स्थिर नहीं हो सकती, जबतक वासना जीवित है। किंतु वासना मरेगी कैसे ? अनेक जन्मोंके कर्मोंका रस पीकर वह बलवती हो गयी है। ज्ञानयोगके लिये ब्राह्मी स्थितिका होना अनिवार्य है और ब्राह्मी स्थिति पानेके लिये प्रवृत्तिको कुचलना आवश्यक है। पर प्रवृत्ति प्रकृतिका सूक्ष्म रूप है। प्रवृत्तिको कुचलनेकी चेष्टा प्रकृतिके साथ एक भीषण संग्राम है, जिसमें मानवताकी बहुत शक्ति क्षीण हो जाती है और सफलता भी संदिग्ध रहती है। प्रवृत्तिकी धारा अधोगामिनी है। जबर्दस्ती रोकनेसे वह वैध मार्ग छोड़कर अवैध मार्ग ग्रहण करती है। बुद्धदेवने देखा कि सारे अनर्थकी जड़ कामिनी और काञ्चन है अतः उन्होंने संघको और भिक्षुओंके दलको नारी-समाजसे पृथक् रक्खा। फल यह हुआ कि विवाहकी पवित्रता तो नष्ट हो गयी, पर भैरवी-चक्रका आविष्कार हुआ एवं भिक्षु और भिक्षुणीके बीच घोर अनाचार फैल गया। तब ज्ञानयोग क्या सर्वथा निष्फल है ? नहीं, निष्फल नहीं है, वह बड़ा कठिन है, पर प्रपत्ति उसे भी सहज बना देती है।

भक्तियोगमें भी एक अड़चन है। भक्तियोगके लिये यह आवश्यक है कि परमात्मामें सदैव ध्यान लगा रहे—तैल-धाराके समान। भगवान् कभी विस्मृत न हों।

तन से कर्म करहु बिधि नाना।
मन राखहु जहँ कृपानिधाना॥

यह होगा कैसे ? मन कभी भगवान्‌से अलग न हो, यह बहुत कठिन है। मन तो बहुत चञ्चल है—सदैव विषयोंकी ओर भागता रहता है। उसको सर्वदा परमात्मामें कैसे लगाया जाय ? कठिन साधना करनेपर यदि यह सम्भव भी हो तो जबतक होश है और ज्ञान है, तबतक तो ठीक है, पर मरनेके समयमें जब बेहोशी आ जाती है, मनुष्य अपना ज्ञान भूल जाता है, तब परमात्माका ध्यान कैसे लगा रहेगा ? और मरनेके समय यदि परमात्माका ध्यान टूट गया, तो मोक्ष कैसे मिलेगा ? यहीं प्रपत्ति आकर भक्तियोगकी सहायता करती है। वस्तुतः प्रपत्ति तो 'परा भक्ति' हीका रूप है। प्रपत्ति बतलाती है कि अपने बल और पौरुषपर मोक्ष मिलना दुर्लभ है। 'भगवान्‌की प्राप्तिमें भगवान् ही उपाय हैं—अपने आपको केवल उनके चरणोंपर न्योछावर कर देना है। प्रपन्नको भव-सागरसे पार उतारनेके लिये भगवान् ही कर्णधार हैं।'

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो
न मेधया न बहुना श्रुतेन।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यः।

(कठोपनिषद् २ । २३)

हमारी शरणागति और अनन्यतासे प्रसन्न होकर भगवान् स्वयं हमें वरण कर लेते हैं और हमारा उद्धार हो जाता है।

भक्त भगवान्‌को पकड़े रहते हैं बंदरीके बच्चेकी तरह, पर प्रपन्नको भगवान् वैसे ही पकड़े रहते हैं, जैसे बिल्ली अपने बच्चेको पकड़े रहती है। बच्चेसे भूल हो सकती है पर माँसे कैसे भूल होगी ? प्रपत्तिमें कर्मका स्थान 'कैंकर्य' ले लेता है, फिर आसक्ति कैसी ? जीवनके सारे कर्मोंको करना है—भगवत्कैंकर्य समझकर। कर्मयोगकी समस्या हल हो जाती है। ज्ञानके साथ परमात्माके प्रति एक अनुराग उत्पन्न हो जाता है।

मिलहिं न रघुपति बिनु अनुरागा।
किएँ जोग जप नेम बिरागा॥

जब परमात्माको हम प्यार करने लग जायँगे, तब फिर उनके ध्यानमें, उनके चिन्तनमें, उनकी सेवामें—आनन्दका रस मिलेगा। फिर उनका साक्षात्कार सदैव हुआ करेगा। तब हृदयकी गाँठें खुल जायँगी, सारे संदेह मिट जायँगे और कर्म-संस्कार क्षीण हो जायगा।

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे॥

(मुण्डक० २ । २ । ९)

इस प्रकार प्रपत्तिमें कर्म, ज्ञान, भक्ति—तीनोंका सहज समन्वय है।

प्रपत्तिका मार्ग बहुत प्राचीन है। शुक्लयजुर्वेदकी एकायन शाखामें प्रपत्तिका वर्णन मिलता है। 'पाञ्चरात्र'

ग्रन्थोंमें प्रपत्तिका साङ्गोपाङ्ग वर्णन मिलता है। कुछ प्राचीन आल्वार संतोंके चार हजार द्राविड़ दिव्य प्रबन्धोंमें प्रपत्तिका निखरा हुआ रूप दृष्टिगोचर होता है। जब सभी उपायोंसे लोग थक जाते हैं, तब प्रपत्तिका आश्रय लेते हैं, जो रामबाणकी तरह अचूक दवा है।

श्रुतियोंमें प्रपत्तिकी झलक

यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं
यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै।
तꣳ ह देवमात्मबुद्धिप्रकाशं
मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये॥
(श्वेताश्वतर० ६। १८)

जिन श्रीमन्नारायण भगवान्‌ने सृष्टिके प्रारम्भमें अपने-आपसे ब्रह्माका सृजन किया और जिन्होंने ज्ञानके प्रचारके लिये उन्हें वेद दिये, जिनकी कृपासे अविद्या, अन्धकार, वासना और बुद्धिके आवरण नष्ट हो जाते हैं, उन आत्मा और बुद्धिको निर्मल, पवित्र तथा प्रसन्न करनेवाले परब्रह्म परमात्माकी शरणमें मैं दीन, निःसहाय और अकिंचन होकर अनन्यभावसे अपने आपको समर्पण करता हूँ। मोक्षकी इच्छा होनेपर ही मनुष्य शरणागत होता है। भगवान्‌के श्रीचरणोंमें आत्मसमर्पण कर देनेसे दायित्व भगवान्‌का हो जाता है।

रामायणमें प्रपत्तिकी झलक

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतं मम॥
(वा० रा० युद्ध० १८। ३३)

भगवान्‌की प्रतिज्ञा है कि जो व्यक्ति केवल एक बार शरणागत हो जाता है, अपने-आपको मेरे चरणोंमें सौंप देता है और कह उठता है कि 'भगवन्! मैं आपका ही हूँ' उसे सभी भौतिक पदार्थोंसे—सभी प्राणियोंसे, मैं अभय कर देता हूँ; संसारके आवागमनसे रक्षा करता हूँ और सम्पूर्ण माया-मण्डलसे मुक्त कर देता हूँ। यह मेरा व्रत है।

यह स्मरण रखना चाहिये कि भगवान्‌ने प्रपन्न शब्दका व्यवहार किया है। प्रपत्तिमें अपनेको दीन, निःसहाय, अकिंचन, आर्त्त और अनन्त अपराधी समझना आवश्यक है। जबतक मनुष्य किसी दूसरे देवता या मनुष्यका भरोसा रखता है, दूसरेकी सहायता तथा अपने धन, बल, शक्ति और विद्यामें विश्वास रखता है, तबतक प्रपत्तिकी भावना नहीं आती।

भगवान्‌की प्राप्तिमें भगवान् ही उपाय हैं। अपने बलपर मोक्ष नहीं मिल सकता। हम तो प्रत्येक क्षण अपराध करते ही रहते हैं, चाहे शरीरसे हो या मनसे। वासना जो हमारे हृदयमें इतनी प्रबल है। अतः सबसे सुन्दर यही है कि अपने आपको भगवान्‌के श्रीचरणोंमें समर्पित कर दें।

गीतामें प्रपत्तिकी झलक

अर्जुन जब कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोगकी बातें सुनकर बहुत घबरा गये, तब भगवान्‌ने अर्जुनसे कहा—

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥
(गीता १८। ६६)

'हे अर्जुन! सभी धर्मोंको अर्थात् कर्म-मार्ग, ज्ञान-मार्ग इत्यादि सभी उपायोंको छोड़कर केवल मेरी ही शरणमें आ जाओ, मैं तुमको सब पापोंसे मुक्त कर दूँगा। शोक मत करो।'

यहाँ प्रश्न उठता है कि भगवान्‌ने अर्जुनको सभी धर्मोंको छोड़नेके लिये क्यों कहा? क्या प्रपन्न सभी धर्मोंको छोड़ देते हैं? इसका तात्पर्य यह है कि अर्जुनको केवल एक भगवान्‌को पकड़ना है—विभिन्न धर्मोंकी उलझनमें नहीं पड़ना है।

श्रुति पुरान बहु कहेउ उपाई।
सुलझ न अधिक अधिक अरुझाई॥

संसारमें जितने आचार्य और दार्शनिक आये, सब एक-एक दीपक जलाकर चले गये। अनेक दीपोंके प्रकाशमें आँखोंमें चकाचौंध आ जाती है। दुर्बल संत्रस्त मानवता समझ नहीं पाती कि वह किधर जाय? ऐसी अवस्थामें उसे केवल एक भगवान्‌को पकड़ना है—'मामेकं' भगवान् उसे जिधर ले जायँ। वह अपना भार भगवान्‌को देकर निश्चिन्त हो जाता है। भगवान्‌ने तो प्रतिज्ञा की है—'मैं तुमको सभी पापोंसे मुक्त कर दूँगा।' यहाँ धर्मसे तात्पर्य भगवान्‌से मिलनेके विभिन्न मार्गोंसे है। उपनिषदोंमें दहरविद्या, पञ्चाग्निविद्या इत्यादि कई विद्याओं और मार्गोंका वर्णन है। गीतामें भी भगवान् कर्मयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग—इन तीन उपायोंका वर्णन कर चुके। अर्जुन सोच नहीं पाते कि वे कौन-सा मार्ग ग्रहण करें। माना कि परम-पदकी ओर बहुत-से रास्ते जाते हैं, पर हम तो सभी रास्तोंसे जा नहीं सकते; किसी एक रास्तेको चुनना है, जो

सबसे सुलभ और सुगम है । कर्ममार्गमें यही कठिनाई है कि हम निष्काम, निर्लिप्त और अनासक्त कैसे होंगे ? कर्म करनेपर भी हमारे अन्तःकरणमें कोई कम्पन न हो, कोई लहर न उठे और हमारे सूक्ष्मशरीरपर कर्म-संस्कारकी तसवीर न पड़े । यह उपदेश देना सहज है कि आसक्ति और कामना मत रक्खो, पर उपदेशसे तो भोग-वासना नहीं मरती, आचरणकी समस्या हल नहीं होती । ज्ञानयोग तो कर्मयोगसे भी कठिन है । भक्तियोगमें भी परमात्माका सदैव ध्यान रहना आवश्यक है । मन तो चञ्चल है और विषय-भोगोंकी ओर सदैव लगा रहता है । इन्द्रियोंपर विजय कैसे प्राप्त की जाय ? मनुष्य कमजोरीका पुतला है । उससे कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग कैसे निभेंगे ? हजार-लाखमें दो-एक ऐसे महापुरुष निकल आवें जो इन्द्रियोंपर विजय प्राप्त करें और कर्म, ज्ञान या भक्तिके सफल अधिकारी सिद्ध हो जायँ; पर अर्जुन तो सामान्य जनताके प्रतीक और प्रतिनिधि हैं । भगवान्‌की यह इच्छा नहीं है कि हजार-लाखमें दो-एकको मोक्ष मिल जाय और बाकी लोग भव-सागरमें डूब जायँ । भगवान् मोक्षका संदेश सबके लिये देते हैं । मुक्तिका द्वार सबके लिये खुला हुआ है, जो कोई भी भगवान्‌के शरणागत हो सके । मोक्षका साधन 'बहुजनहिताय, बहुजनसुखाय' होना चाहिये । अर्जुनको केवल अपने परमपद जाना नहीं है । वे तो जनसमूहके लिये एक सरल सुगम मार्ग अपनाना चाहते हैं । जीवात्मा असंख्य हैं और साधन-पथ ऐसा होना चाहिये जो आजकी परिस्थितिमें सम्भव हो सके । इसीलिये अर्जुन आर्त्त और निःसहाय होकर भगवान्‌की शरणमें गिर पड़ते हैं । शरणागतिके मार्गमें कोई खतरा नहीं है । कर्मका स्थान कैंकर्य ले लेता है । सभी कर्म तो भगवान्‌की प्रसन्नता-के लिये करने हैं और फिर उन्हींको समर्पित कर देने हैं, तब आसक्ति और भोग-वासना कैसी ? सभी इन्द्रियोंको जीवित रहनेके लिये तथा सुचारु रूपसे कार्य करनेके लिये भगवत्प्रसादके रूपमें तो समुचित भोजन दिया ही जाता है । सभी कर्म कर्तव्यकी प्रेरणासे तथा भगवत्सेवा समझकर करनेसे वासनाको तो कर्मका रस नहीं मिलता, अतः वह आप-से-आप शिथिल हो जाती है । प्रपत्तिमें प्रवृत्तिको कुचलनेकी चेष्टा नहीं की जाती; क्योंकि यह असम्भव है—उसे परिमार्जित किया जाता है । भगवान्-से अनुराग होनेपर प्रवृत्ति आप-से-आप भगवान्‌के सौन्दर्य और माधुर्यकी ओर मुड़ जाती है । वासनाका नृत्य समाप्त हो जाता है और मायाकी डोरी कट जाती है । भक्तिमें कर्म और ज्ञान—दोनोंका समन्वय है और प्रपत्तिमें कर्म, ज्ञान तथा भक्ति—तीनोंका समन्वय है । प्रपत्तिके साधनपथपर विघ्नकी कोई सम्भावना नहीं; क्योंकि मनुष्य अपना भार भगवान्‌को सौंप देता है और प्रपन्नको पार लगाना प्रभुका कर्तव्य है ।

कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति ॥

(गीता ९ । ३१)

वाराहपुराणमें प्रपत्तिकी झलक

शास्त्रका आदेश है कि मरनेके समय जैसी धारणा बनी रहती है, जीवकी वैसी ही गति होती है । इसीलिये मरनेके समय लोग कीर्तन, गीता-पाठ इत्यादि क्रिया करते हैं, जिसमें मरनेवालेको भगवान्‌का ध्यान हो जाय ।

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन् मामनुस्मरन् ।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम् ॥

(गीता ८ । १३)

अब प्रश्न यह है कि यदि मरनेके समय ज्ञान ठीक है, बेहोशी नहीं आयी, तब तो अधिक चिन्ता नहीं, मरनेवाला भगवान्‌में ध्यान लगा सकता है । पर अधिकांश लोग मरनेके समय बेहोश हो जाते हैं । संनिपातके प्रकोपसे या वायुके विकारसे मनुष्य अपना ज्ञान खो देता है । फिर वह परमात्माका स्मरण कैसे करे ? मरनेके समय परमात्मा यदि विस्मृत हो जाते हैं, तो फिर मोक्ष कैसे मिले ? यहीं प्रपत्ति आकर हमारी सहायता करती है । जो एक बार भगवान्‌का शरणागत हो जाता है और अपने आपको उनके चरणोंपर न्योछावर कर देता है, उसको पार लगानेका भार भगवान्‌के ऊपर चला जाता है । इसीलिये भगवान् कहते हैं—

यदि वातादिदोषेण मद्भक्तो मां हि विस्मरेत् ।
अहं स्मरामि मद्भक्तं नयामि परमां गतिम् ॥

(वाराहपुराण)

'यदि वात, पित्त, कफके विकारसे मरनेके समय मेरा भक्त चैतन्य गवाँ देता है और मुझे भूल जाता है, तो फिर मैं अपने भक्तको स्वयं याद करता हूँ और उसे परमपदपर ले आता हूँ ।'

ततस्तं म्रियमाणं तु काष्ठपाषाणसंनिभम् ।
अहं स्मरामि मद्भक्तं नयामि परमां गतिम् ॥

'मरनेके समय जब प्रपन्न लकड़ीके कुन्देकी तरह या पत्थरकी तरह निश्चेष्ट हो जाता है, उस समय उसे कुछ भी ज्ञान नहीं रहता, वह मेरा स्मरण कैसे करेगा ? उस समय मैं ही अपने भक्तका स्मरण करता हूँ और उसे परमपदपर ले आता हूँ।'

पत्नीकी रक्षा, पत्नीकी प्रतिष्ठाका भार जैसे पतिपर रहता है, उसी प्रकार प्रपन्नकी रक्षा, प्रपन्नको भवसागरसे पार लगानेका भार परमात्माके ऊपर रहता है। प्रपन्न तो उनके चरणोंपर आत्मसमर्पण कर निश्चिन्त हो जाता है।

स्तोत्ररत्नमें प्रपत्तिकी झलक

न धर्मनिष्ठोऽस्मि न चात्मवेदी
न भक्तिमांस्त्वच्चरणारविन्दे ।
अकिंचनो नान्यगतिः शरण्यं
त्वत्पादमूलं शरणं प्रपद्ये ॥

श्रीयामुनाचार्य स्वामी कहते हैं—

'हे भगवन् ! मैं धर्मनिष्ठ नहीं हूँ। धर्मनिष्ठा कर्मयोगके अन्तर्गत है। सफल कर्मयोगके लिये निष्काम, निर्लिप्त और अनासक्त होना आवश्यक है। वासना मेरी मरी नहीं है और अचानक मुझसे हजारों निन्दित कर्म करा देती है। मैं आत्मज्ञानी नहीं हूँ; क्योंकि आत्मज्ञान ज्ञानयोगके अन्तर्गत है और सफल ज्ञानयोगके लिये स्थितप्रज्ञ होना आवश्यक है। मेरी बुद्धि स्थिर ही नहीं रहती। असंख्य जन्मोंके प्रारब्ध, संचित और क्रियमाण कर्मोंका रस पीकर वासना बलवती हो गयी है और विषयोंको आते देखकर अन्तः-प्रदेशमें नाचने लगती है। आपके चरणारविन्दमें मेरी भक्ति भी नहीं है; क्योंकि भक्तियोगके लिये तैलधाराके समान अनवरत आपका ध्यान रहना आवश्यक है। मुझसे तो एक क्षण भी एकाग्रचित्तसे आपका ध्यान नहीं बन पड़ता। मेरे पास न धन है, न बल है, न विद्या है। मुझे कुछ भी नहीं है। कर्मयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग, सभी उपायोंको छोड़कर, अनन्य और अकिंचन भावसे मैं आपके शरणागत होता हूँ। मुझे किसी दूसरेकी आशा नहीं है। मेरे तो आप ही उपाय हैं।'

श्रीरामचरितमानसमें प्रपत्तिकी झलक

सखा नीति तुम्ह नीकि बिचारी ।
मम पन सरनागत भयहारी ॥
कोटि बिप्र बध लागहिं जाहू ।
आए सरन तजउँ नहिं ताहू ॥
सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं ।
जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं ॥
(श्रीरामचरित० सुन्दर० दोहा ४२-४३)

जननी जनक बंधु सुत दारा ।
तनु धनु भवन सुहृद परिवारा ॥
सब कै ममता ताग बटोरी ।
मम पद मनहि बाँध बरि डोरी ॥
समदरसी इच्छा कछु नाहीं ।
हरष सोक भय नहिं मन माहीं ॥
अस सज्जन मम उर बस कैसें ।
लोभी हृदयँ बसत धन जैसें ॥
(श्रीरामचरित० सुन्दर० दोहा ४७)

प्रपन्नका सारा भार तो भगवान् ले ही लेते हैं, पर प्रपन्नका भी कर्तव्य होता है—जीवनभर प्रभुकी प्रसन्नताके लिये सारे कर्मोंको भगवत्कैंकर्य समझकर करते जाना। शरणागतिके बाद पत्नीकी तरह प्रपन्नका भी एक ही कर्तव्य रह जाता है—

आनुकूल्यस्य संकल्पः प्रातिकूल्यस्य वर्जनम् ।

परमात्माके अनुकूल कार्योंको करना और उनके प्रतिकूल कार्योंको नहीं करना। जिस कार्यसे वे प्रसन्न हों, जो कार्य उन्हें रुचे, पत्नीकी तरह प्रपन्न वे ही कार्य करें और जिस कार्यसे वे नाराज हो जायँ, जो उनकी इच्छाके विरुद्ध हो, वैसा कार्य प्रपन्न नहीं करें। पत्नी पतिके अनुकूल अपना जीवन बना डालती है, पतिकी इच्छा ही उसकी इच्छा है। उसी प्रकार प्रपन्नको भी परमात्माके अनुकूल अपना जीवन बनाना होगा, परमात्माकी इच्छा ही उसकी इच्छा होनी चाहिये।

प्रपन्नके लिये भगवान्ने कह दिया है—

'यत्करोषि यदश्नासि............... ।
...................तत्कुरुष्व मदर्पणम् ॥'
(गीता ९ । २७)

'जो कुछ करो, जो कुछ खाओ, सब मुझे अर्पित कर दो।'

हमें अपने सम्पूर्ण भोज्यपदार्थ और सारे कर्म परमात्माको समर्पित कर देने हैं। अतः हम वही भोजन कर सकते हैं और वही कर्म कर सकते हैं, जो परमात्माके अर्पित होनेके

योग्य हो। अपवित्र भोजन और अनुचित कर्म तो परमात्माको समर्पित होंगे नहीं, अतः प्रपन्नका आहार और आचरण स्वाभाविक ही पवित्र रहना चाहिये।

पत्नी कितनी भी सती-साध्वी क्यों न रहे, किंतु पतिके समीप अपनेको अनन्त अपराधिनी समझती रहती है, उसी प्रकार प्रपन्नका भी नीचानुसंधान आवश्यक है। भगवान्के सम्मुख प्रपन्न अपनेको अनन्त अपराधी समझे।

न निन्दितं कर्म तदस्ति लोके
सहस्रशो यन्न मया व्यधायि।
सोऽहं विपाकावसरे मुकुन्द
क्रन्दामि सम्प्रत्यगतिस्तवाग्रे ॥
(आलवन्दारस्तोत्र)

ऐसा निन्दित कर्म नहीं है
जिसे न शतशः कर पाया हूँ।
जीवनकी झोलीमें केवल
कंकड़ कंटक चुन लाया हूँ॥

प्रपन्नने तो भगवान्के श्रीचरणोंपर आत्मसमर्पण कर दिया है। अतः उसका तन-मन-धन—सब कुछ परमात्माका है। इसलिये वह अपने समयका, शक्तिका और धनका दुरुपयोग नहीं कर सकता। समय, शक्ति और धनको व्यर्थ गँवाना एक महान् अपचार है। इनका उपयोग केवल 'भगवत्कैंकर्य' में ही हो सकता है। एक क्षण भी हम बिना भगवत्कैंकर्यके नहीं रह सकते। जीवनके सारे कर्म तो हमें भगवत्कैंकर्यके रूपमें करने ही हैं, शरीरमें नवीन स्फूर्ति और उत्साह लानेके लिये खेल, विश्राम और मनोविनोद भी भगवत्कैंकर्यके' अन्तर्गत आ जाते हैं। पर व्यर्थ गप-शपमें, निरर्थक वाद-विवादमें और ऐसे कामोंमें जिनसे अपना या पराया, किसीका कल्याण नहीं होता हो—समय, धन और शक्ति नहीं लगाना चाहिये।

परमार्थकी पगडंडियाँ

जब हम सब बातें सबके अनुकूल नहीं कर सकते और जब हमारी क्रिया, हमारी बात दूसरोंके प्रतिकूल होती है, तब दूसरे यदि हमारे प्रतिकूल करें तो इसमें हमें बुरा क्यों मानना चाहिये? फिर भगवान्की ओर चलनेवाले तथा विषयासक्त लोगोंके तो मार्ग ही दो होते हैं और वे एक दूसरेसे उलटे होते हैं। भगवान्के मार्गपर चलनेवाले लोगोंको विषयी लोग मूर्ख मानते हैं और वे उनका उपहास भी करते हैं। लोक-प्रतिकूलता तो उनके अङ्गका आभूषण बन जाती है। अतएव सदा सब अवस्थाओंमें खूब प्रसन्न रहकर मनसे भगवान्की स्मृतिमें निमग्न रहना और भगवान्को अपने समीप अनुभव करते रहना चाहिये। यह विश्वास रखना चाहिये कि भगवान् अपने जनको कभी छोड़ नहीं सकते।

भगवान्के सम्बन्धमें यह समझना चाहिये कि भगवान् हमारे हैं; उनपर हमारा अधिकार है। भगवान्से डरनेकी आवश्यकता नहीं है। आवश्यकता है—उनको सुखी देखनेकी। हमारी प्रत्येक क्रियासे उनको सुख मिले, बस, यही साधना है और यही साध्य है।

× × × ×

हमारे मानसमें परम पवित्र भाव सदा रहे, सदा भगवान्का ही चिन्तन होता रहे। कभी मनमें तामसिक भाव या विषाद, शोक आवे ही नहीं। हर अवस्थामें प्रभुकी मङ्गलमयी कृपाकी अनुभूति होती रहे। प्रभु जो कुछ भी करते हैं सो हमारे मङ्गलके लिये करते हैं। अतएव किसी प्रकारसे भी असंतुष्ट नहीं रहना चाहिये। तुमपर परिस्थितिका कोई भी प्रभाव नहीं पड़ना चाहिये। तुम हर अवस्थामें भगवान्की कृपाका तथा उनकी नित्य मधुर संनिधिका प्रतिक्षण अनुभव करते रहो। तुम्हारा मन सदा-सर्वदा भगवत्कृपा तथा भगवत्-संनिधिके आनन्दमें हँसता रहे। भगवान् अभी इच्छा पूर्ण क्यों नहीं करते, इस बातका दुःख नहीं करना चाहिये; क्योंकि भगवान्के समान हमलोगोंके सुहृद् भगवान् ही हैं और वे परम मङ्गलमय हैं तथा ज्ञानिशिरोमणि हैं, अतएव वे जो कुछ करते हैं, करेंगे,

सो सर्वथा मङ्गल ही करते हैं और मङ्गल ही करेंगे। भगवान् तुम्हारे चित्तमें निरन्तर बसे रहकर तुम्हें शान्ति तथा परम सुखका अनुभव कराते रहें—यही उनसे बार-बार प्रार्थना करनी चाहिये।

× × × ×

दूसरेके दुःखको अपना दुःख मानना अथवा दूसरेके दुःखका अपनेमें ही अनुभव होना तो संतका स्वभाव होता है, जो अत्यन्त आदरणीय और सर्वथा वाञ्छनीय है।

जगत्‌से सुखोंकी आशा ही दुःखोंकी जननी है। असलमें श्रीभगवान्‌के साथ जीवनका सम्पूर्ण सम्बन्ध हो जानेपर जगत्‌के साथ सम्पर्क रहता ही नहीं। भगवान्‌का प्रियजन वही है, जिसपर अन्य किसी भी प्राणी, पदार्थ, परिस्थितिका अधिकार न रहे अर्थात् जो अन्य किसीके अधिकारमें न रहे, साथ ही उसपरसे सबका अधिकार उठ जाय तथा सबपरसे उसका अधिकार उठ जाय। फिर वह सर्वथा अपने प्राणनाथ प्राणप्राण प्रभुका और प्रभु सर्वथा उसके हो जाते हैं।

× × × ×

गेंदको जिधरकी ओर ठोकर लगती है, उसी ओर वह उछलकर चली जाती है। जिधर 'वह' ले जाना चाहता है, उधर ही शरीर चला जाता है। मन तो एक ही जगह नित्य-निरन्तर रहता है। × × × × भगवान्‌का प्रत्येक विधान सर्वथा मङ्गलमय, कल्याणमय है। शरीरकी स्वाधीनता, पराधीनता कोई अर्थ नहीं रखती। स्वाधीन भावसे सदा समीप रहनेवाले भी मनसे दूर रह सकते हैं और शरीरसे अत्यन्त दूर रहनेवाले भी मनसे सदा अत्यन्त समीप रह सकते हैं। शरीर कहीं भी रहे, मनमें प्रभुका निवास रहना चाहिये। वह है ही···फिर विषाद, उदासी, कष्ट और दुःखको स्थान ही कहाँ? सूर्यके प्रखर प्रकाशमें अन्धकारको कहीं स्थान है?

स्मृति ही जीवन है, स्मृति ही सच्चा मिलन है। प्रभु कभी भूलते नहीं हैं। वे सदा-सर्वदा हमारे साथ हमारे अत्यन्त समीप रहते हैं, ऐसा विश्वास तथा अनुभव करते हुए निरन्तर उनके स्मृतिमय मधुर मिलनमें मत्त रहना चाहिये—

बिछुड़े नहीं न बिछुड़ सकते हैं, मुझसे कभी कहीं वे प्रियतम।
मिले-मिलाये रहते हैं अति मधुर हर जगह ही वे प्रियतम॥

इस प्रकार निरन्तर अनुभव करते हुए परम प्रसन्न रहना चाहिये।

संसारमें भगवान्‌के बिना केवल दुःख-ही-दुःख है—'दुःखालयम्'। सदा सुख केवल एकमात्र भगवान्‌में ही है। जब हमारे जीवनमें एकमात्र श्रीकृष्ण ही बच रहते हैं, तभी यथार्थ तथा नित्य सुखके दर्शन होते हैं। जहाँतक दूसरी विनाशी वस्तुओंका सम्पर्क रहता है, वहाँतक सुख नहीं हो सकता। अतएव सुख चाहनेवाले मनुष्यको सबका अभाव करके एकमात्र भगवान् श्रीकृष्णका ही नित्य साक्षात्कार करते रहना चाहिये। यही सत्य है और यही परमार्थ है। यहाँके किसी हानि-लाभका कोई भी महत्त्व नहीं है, ये सब खेल हैं। उनके मनकी सदा होती रहे, बस! केवल श्रीश्यामसुन्दर ही सर्वत्र छाये हैं।

मरना-जीना, आना-जाना रखता कुछ भी अर्थ नहीं।
एक तुम्हारे मनकी हो, बस, स्वार्थ यही, परमार्थ यही॥

भगवान् मन-बुद्धिका समर्पण चाहते हैं। मन-बुद्धिके समर्पित हो जानेपर शेष सब कुछ अपने-आप ही समर्पण हो जाता है। यही 'समर्पित जीवन' है। फिर जरा भी चिन्ता, भय, विषाद, मद-मान नहीं रह जाता। जीवन सर्वथा भगवान्‌का लीलाक्षेत्र बन जाता है। वे अपने इच्छानुसार जब,

जैसा चाहते हैं, निस्संकोच खुलकर खेलते हैं और समर्पण करनेवालेके साथ सदा-सर्वदा एकात्मस्वरूप होकर घुले-मिले रहते हैं।

फिर मनमें सदा संतुष्ट रहना चाहिये कि भगवान्‌का हमसे कभी वियोग होता ही नहीं। वे सदा-सर्वदा हमारे पास, हमारे साथ, हमसे घुले-मिले हुए ही रहते हैं और इसका अनुभव भी होना ही चाहिये।

मनुष्यको निरन्तर भगवान्‌के संकेतके अनुसार करनेके लिये तैयार रहना चाहिये और वह तैयारी भी होनी चाहिये अत्यन्त प्रसन्न हृदयसे, भगवान्‌के प्रीत्यर्थ ही। जैसे कठपुतली सूत्रधारके इशारेपर सब कुछ करती है, इसी प्रकार हमें भी रहना चाहिये—बिना अहंकारके, बिना प्रयासके, सहज ही।

प्रेमकी वास्तविक प्राप्ति तो भगवान्‌के कराये ही होगी। पर अपनी ओरसे उसकी पूर्ण तथा तीव्र इच्छा हो जानी चाहिये। भगवान्‌की ओरसे तो उनका प्रेम सदा प्राप्त ही है; उसे स्वीकार करते ही प्रेम मिल जाता है। इसमें जरा भी संदेह नहीं है। यह परम सत्य है कि भगवान्‌की ओरसे प्रेम प्राप्त होनेपर भी हमारी मोहजनित भोग-लालसा हमें उस पवित्र तथा महान् प्रेम-धनसे वञ्चित रखती है। इसका हमें दुःख होना चाहिये—महान् यन्त्रणा मनमें होनी चाहिये कि 'हाय! भगवान्‌की ओरसे सब कुछ होते हुए भी हम पवित्र प्रेम-सम्पत्तिसे वञ्चित हो रहे हैं।' इसके लिये भी भगवान्‌से ही प्रार्थना करनी चाहिये। मनमें यह विश्वास भी तीव्ररूपसे बढ़ाना चाहिये कि भगवान् अपना प्रेम जो हमें दे चुके हैं, उसके रसकी पूर्ण अनुभूति हमें होगी। संदेह—संशय जरा भी नहीं रहना चाहिये।

मनसे संसारको निकालना है और उसके स्थानपर पूर्णरूपसे भगवान्‌को भरना है। संसारकी कामना-वासना छिपी रहा करती है और वह कई बार भगवान्‌के नामपर भी अपनी पूर्ति करना चाहती है। उससे सदा सावधान रहना चाहिये तथा भगवान्‌के नामका जप सदा करते रहना चाहिये। नित्य-नियममें लापरवाही नहीं करनी चाहिये। उससे बहुत लाभ होता है। ममता केवल भगवान्‌में हो और भगवान्‌के नाते भगवान्‌की प्रसन्नताके लिये ही घरका काम हो। ऐसा बारंबार निश्चय करना चाहिये—'संसार सदा दुःखमय है और भगवान् परमानन्दमय हैं।' भगवान्‌के साथ जीवन जुड़ जानेपर दुःख कभी होगा ही नहीं, यह निश्चित है।

तुम भगवान्‌पर तथा उनकी कृपापर विश्वास करके चित्तमें शान्ति रक्खो। जगत्‌के लोगोंकी ओर देखो वे कितने दुखी हैं, कितने जल रहे हैं। उन लोगोंकी अपेक्षा तुम बहुत सुखी हो। तुम्हें विषयी लोगोंके वातावरणमें रहना पड़ता है। मनमें कई तरहके भय-संकोच रहते हैं—यह ठीक है। इनको नाटकके खेलकी भाँति मानकर सहन करो और स्वयं नाटक-मञ्चपर खेलनेवालेकी भाँति व्यवहार करो। वास्तवमें तुम्हारा एक भगवान्‌को छोड़कर कहीं कोई सम्बन्ध ही नहीं है। यह तो सब व्यवहारकी चीजें हैं। भगवान्‌से नित्य जुड़े रहो। अपनी आत्माका सम्बन्ध केवल एक भगवान्‌से ही रक्खो, फिर इन व्यवहारोंका असर आप ही कम हो जायगा। तुम्हारे मनकी सुननेवाला कोई नहीं है, न तुम्हारे मनकी कोई बात होती है, सो भी ठीक है। तुम अपना मन ही अपना क्यों रखते हो?

तुम्हारी एक-एक बात, छिपी हुई मनकी बात भी निरन्तर तुम्हारे अंदर रहनेवाले तुम्हारे भगवान् जानते हैं। सुनानेकी आवश्यकता ही नहीं है और वे अपने मनकी करते रहते हैं। उनके मनकी होने दो। बस, तुम तो प्रसन्न रहो—मौजमें रहो—संसारकी चीज तो ऐसे ही रहेगी। घरमें नाटकके पात्रकी ज्यों रहो। मन उनका; वे कुछ भी करें—करावें।

तुम्हारे मनकी आतुरता बहुत ही उत्तम है। यही तो आर्तभाव है। पर तुम्हारे अंदर आतुरताके

साथ ही तुरंत मिलन-जनित सुखका अपार संचार हो जाय। भगवान् कभी विछुड़ते ही नहीं। उनका नित्य-नित्य संयोग है और रहेगा। वे सदा ही सबके हैं, पर जो उनका हो चुका, उसके समीप, उसके अंदर रहनेमें तो उनको आनन्द-रस मिलता है। वे स्वयं प्रलुब्ध होकर वहाँ रहते हैं और निरन्तर उसे अपने अंदर बसाये रखते हैं—'लोभी हृदयँ बसइ धन जैसे।' वे निरन्तर उसका स्मरण करते रहते हैं। उसे भूलना क्षणभरको भी उन्हें सहन नहीं होता। श्रीरामजीने सीताजीसे कहलाया था—'सो मन रहत सदा तोहि पाहीं।'

यहाँ जो कुछ भी परिणामरूपमें परिस्थितियाँ प्राप्त होती हैं, वे सब परिणाममें हमारे मङ्गलके लिये पूर्वकर्मानुसार श्रीभगवान्‌के द्वारा निर्मित होती हैं। ऑपरेशन करवानेपर शरीरका विषरहित होकर नीरोग हो जाना, मित्रके रूपमें घरमें बसे हुए चोरका नाश हो जाना, किसी छोटी वस्तुका नाश होकर उससे कहीं अधिक महत्त्वकी बहुत बड़ी वस्तुका प्राप्त हो जाना—जैसे हमारे लाभके लिये होता है, उसी प्रकार यहाँकी किसी अनुकूल मानी हुई परिस्थितिका नाश भी परिणाममें उससे कहीं अधिक महत्त्वकी अच्छी परिस्थितिकी प्राप्तिके लिये ही होता है। कर्मोंका फल देनेवाले भगवान् परम न्यायकारी होनेके साथ ही परम दयालु हैं और वे सबके सहज सुहृद् हैं। उनके द्वारा निर्मित कोई भी फल ऐसा नहीं होता, नहीं हो सकता, जिसमें हमारा कल्याण न हो। फिर वे भगवान् सुहृद् होनेके साथ सर्वज्ञ हैं, सर्वशक्तिमान् हैं और सर्वलोकमहेश्वर हैं। उनके द्वारा भूल नहीं हो सकती। हमारा वास्तविक हित किसमें है, इसे ये निर्भ्रान्त जानते हैं, वे सब कुछ करनेमें समर्थ हैं और उन्हें कोई रोक नहीं सकता। वे सुहृद हैं, इसलिये अहैतुक कल्याण करते हैं। ऐसी अवस्थामें किसी भी परिस्थितिको प्रतिकूल समझकर दुखी होना, अशान्त होना तो भगवान्‌के सौहार्दपर अविश्वास करना है। अतएव तुम्हारी वर्तमान परिस्थिति निश्चय ही तुम्हारे भविष्यके मङ्गलके लिये है। मानो बड़ा सुन्दर भविष्य काली भयंकर नकाब डाले तुम्हारे सामने खड़ा है। नकाबके अंदरकी चीज सामने आते ही तुम परम सुखी हो जाओगे और विश्वास करनेपर अभी सुखी हो जाओगे। अतएव भगवान्‌के मङ्गल-विधानपर, उनकी नित्य अहैतुकी कृपापर विश्वास करो।

× × × ×

तुमको निरन्तर भगवान्‌के प्रेममें विभोर रहना तथा किसी भी प्रकारकी कोई चाह या किसी भी स्थितिकी कोई परवा न रखकर प्रतिपल उनके मधुर मुसकानयुक्त मुखकमलको हृदयके पवित्र तथा एकदर्शी नेत्रोंसे निहारते रहना चाहिये। तुमको इसमें बिना किसी संदेहके विश्वास करना चाहिये कि भगवान्‌ने तुमको अपना लिया है। अतः तुम अब निश्चिन्त हो। अब चिन्ता या चिन्तन करना है तो केवल चिन्तामणिचतुर प्रभुका। रात-दिन उन्हींके साथ घुल-मिलकर रहना है। उन्हींका स्मरण करना है। उनके सिवा जगत्‌का कोई चिन्तन रहे ही नहीं। जगत्‌का कभी कोई चिन्तन हो तो वह भी केवल उन्हींके सम्बन्धसे, केवल उन्हींको लेकर ही हो। अन्य कोई सत्ता, सम्बन्ध, हेतु न रहे। ऐसा विश्वास करो; ऐसा बराबर निश्चय करो। संसारके चित्र कभी मनमें आवें तो या तो उन्हें ललकारकर निकाल दो, या उन्हें प्रभुके बना दो। तुम कहो कि मुझमें कोई बल नहीं है, कोई सामर्थ्य नहीं है तो तुम केवल इच्छा और निश्चय करो। फिर सारा काम बना-बनाया है। तुम्हें अपने बलकी कोई आवश्यकता नहीं। तुम्हारी तो अनन्य इच्छा तथा अकाट्य निश्चय होना चाहिये। फिर प्रभु अपनी चीजको आप ही सँभालेंगे। उन्हें कहनेकी आवश्यकता नहीं है। हम केवल यही मानते रहें कि 'हम केवल उन्हींकी चीज हैं। उनके सिवा हमारा न कोई है, न किसीसे किसी प्रकार सम्बन्ध है। सारे नाते-नेह, सारी प्रीति-प्रतीति, सारा अपनापन, आत्मीयताके सम्बन्ध एकमात्र उन्हींसे है। सब कुछ वे ही हैं।' इस प्रकार बार-बार सोचो, निश्चय

करो। है ऐसा ही। तुम्हारे निश्चयसे तुम्हें ऐसा अनुभव हो सकता है। जीवन-मरण, सुख-दुःख भी वही हैं; वही हैं।

मनुष्यकी बुद्धि कब कैसी हो जाती है; कुछ पता नहीं। संसारसे आशा ही दुःखकी मूल है और भोगकामना ही सारे पापोंकी जननी है। जगत्‌के भोगोंमें मन फँसा रहता है, उन्हींकी रात-दिन स्मृति रहती है। प्रतिकूलतामें महान् दुःख होता है और परिणाममें दुःखके कारण और भी बन जाते हैं। भगवान्‌की स्मृति ही जीवनका परम लाभ है। भोगोंसे वितृष्णा और भगवान्‌की स्मृति—इसीका प्रयत्न सावधानीसे करना चाहिये।

× × × ×

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी लीला-माधुरीमें श्रीगोपाङ्गनाओंके ये दो भाव बड़े ही मधुर तथा परस्पर अत्यन्त सुखोत्पादक हुआ करते हैं। वे उनकी स्तुति करती हैं, अपनी अत्यन्त हीनताका प्रदर्शन करती हैं; साथ ही उन्हें चोर, कपटी, छलिया, निर्दयी—न मालूम क्या-क्या और बताती हैं। मैया यशोदा आदि वात्सल्यमयी गोपियाँ उन्हें चोर, शरारती, नटखट, ऊधमी, चपल, असंयमी, चटोरा आदि-आदि पता नहीं क्या-क्या कहती हैं—श्रीकृष्ण इन सबको सुन-सुनकर बड़े ही प्रसन्न हुआ करते हैं। सैकड़ों स्तुतियोंसे वे वैसे प्रसन्न नहीं होते, जैसे गोपियोंकी प्यारी सुधाभरी गालियोंसे होते हैं। इस गालीमें न द्वेष है, न क्रोध है, यह तो प्रेमका एक मीठा स्वरूप है, जिसमें अमृत ही अमृत भरा है। यह रोष बड़ा शीतल सुखद है। भगवान् इनसे बहुत ही प्रीतिलाभ करते हैं।

× × × ×

××× बगीचेमें बेलेके फूल खिलते हैं तो उनके बढ़िया-बढ़िया सुन्दर हार-गजरे गूँथ-गूँथकर भगवान्‌को पहनाया करो—उन्हें पुष्प बड़े प्रिय होते हैं। फिर जिस पुष्पमें हृदयकी समर्पण-सुगन्ध भरी होती है, उसकी प्रियताका तो कहना ही क्या है! तुम्हारा यह पुष्प-पूजन वे सदा ग्रहण करते हैं, करेंगे। बस, करते ही रहो सुपुष्पोंसे, सुरभित सुमनोंसे उनकी नित्य एकान्त मधुरतम अर्चना, चलती रहे निरन्तर यह पूजा।

× × × ×

यहाँकी प्रत्येक वस्तु क्षणभङ्गुर तथा वियोगशील है। इसमें ममता-आसक्ति होनेसे ही बन्धन तथा दुःख होता है। आत्माके नाते एक परमतत्त्व होनेपर भी जीवके नाते कोई किसीका नहीं है। न किसीके साथ किसीका स्थायी सम्बन्ध है। जैसे रेलके डिब्बेमें या धर्मशालामें, जहाँ-तहाँके यात्री आकर इकट्ठे हो जाते हैं और फिर समयपर अपनी-अपनी राह चल देते हैं, यही यहाँका हाल है। इलाज करना-करवाना कर्तव्य है—सो करवाया ही जाता है, पर इलाज करनेवाले भी मृत्युसे नहीं बच सकते। संसारके इस अन्तिम, अपूर्ण और दुःखमय स्वरूपको समझकर जीवनके असली उद्देश्यपर ध्यान देना चाहिये।

× × × ×

असली फल वह है, जो अन्तिम परिणामके रूपमें प्राप्त होता है। चापलूसी या पाप करनेवाला मनुष्य यदि एक बार बढ़ते हुए दीखता है तो इसका मतलब यह नहीं कि यही अन्तिम परिणाम है। घरमें आग लगनेपर भी एक बार रोशनी दीख सकती है, पर घर खाक हो जाता है। असलमें सत्य और पुण्य-कर्मका फल ही वास्तविक शान्तिदायक और सुखदायक हो सकता है। इसपर विश्वास करके शुद्ध आचरणमें लगे रहना चाहिये। किसी आकस्मिक उन्नतिसे लुभाकर पापमें प्रवृत्ति उचित नहीं।

× × × ×



आदर्श संत श्रीहरिबाबा

(लेखक—भक्त श्रीरामशरणदासजी, पिलखुवा)

इसी जनवरीमें आकाशवाणीसे पूज्यपाद श्रीहरिबाबाके महाप्रयाणका संवाद सुना तो मैं अवसन्न हो गया। हृदय व्याकुल हो गया और नेत्रोंसे अश्रुपात होने लगा। 'हाय! निष्ठुर नियतिको क्या कहा जाय। वर्तमान भारतकी महान् विभूति, नैष्ठिक बाल-ब्रह्मचारी, जितेन्द्रिय, दीनोंके त्राता और श्रीहरिनाम-संकीर्तनके द्वारा भक्तिकी गङ्गा बहाकर लाखों नर-नारियोंको पवित्र करनेवाले पूज्यचरण श्रीहरिबाबा भी चले गये! सनातनधर्मका तो जैसे सूर्य ही अस्त हो गया।' मैं अपना हार्दिक दुःख किस प्रकार व्यक्त करूँ! सच तो यह है कि इस महान् आदर्श संतके गोलोक-गमनसे उनके भक्त ही नहीं, लाखों नर-नारी अनाथ-से हो गये हैं।

स्वनामधन्य प्रातःस्मरणीय श्रीहरिबाबाका जन्म होशियारपुर (पंजाब) जनपदके मैंगखाला गाँवमें श्रीप्रतापसिंहजीकी धर्मपत्नीकी कोखसे संवत् १९४१ वि०में फाल्गुन शुक्ल चतुर्दशीको हुआ था। आपका नाम दीवानसिंह रखा गया। चार वर्षकी ही आयुमें आपको पूज्य गुरुदेव श्रीसंत सच्चिदानन्दजी महाराजका आशीर्वाद प्राप्त हो चुका था; फिर असार संसारके मायाजालमें आप कैसे फँसते! आपकी माध्यमिक शिक्षा होशियारपुरमें पूर्ण हुई तो पिताने डाक्टरी शिक्षाके लिये लाहौर कालेजमें प्रविष्ट करा दिया; किंतु आप तो काम-क्रोधादिक व्याधियोंपर विजय प्राप्तकर सहस्रों नर-नारियोंको श्रीभगवन्नामामृतका पान कराकर उनका परम मङ्गल-सम्पादन करने आये थे, फिर स्वाभाविक ही विदेशी वेश-भूषा और विदेशी भाषा उनसे छूट गयी। माता-पिताने विवाहकी लालसा प्रकट की तो आपने स्पष्ट शब्दोंमें अस्वीकार करते हुए कह भी दिया—'मैं संसारके झंझटोंमें फँसनेके लिये नहीं आया हूँ।'

भगवत्प्रेमकी तन्मयताके कारण आपने घर छोड़ दिया और अपने गुरुके आश्रमपर पहुँचे। आग्रह करनेपर भी जब गुरुदेवने संन्यासकी दीक्षा नहीं दी तो आप वहाँसे सीधे भगवान् विश्वनाथकी पुरी काशी पहुँचे और वहाँ पुण्यतोया भगवती भागीरथीके पावन तटपर कुछ दिनोंतक एकान्तवास किया। कुछ ही दिनोंमें अन्तरकी विरक्ति बाह्यरूपमें वस्त्रोंपर प्रकट हो गयी। जब आप पुनः अपने गुरुचरणोंमें उपस्थित हुए तो उन्होंने अपने परम विरक्त शिष्यको 'स्वतःप्रकाश' नामसे सम्बोधित किया और आगे चलकर आपका यही नाम प्रसिद्ध भी हो गया; किंतु कुछ दिनोंके पश्चात् अखण्ड श्रीहरियशोगान करनेके कारण श्रीहरिबाबाके नामसे आपकी ख्याति हो गयी और अबतक उन्हें सभी लोग इसी नामसे जानते हैं। आपने कुछ दिनोंके अनन्तर गुरु-आश्रम छोड़ दिया और स्वतन्त्ररूपसे विचरण करने लगे।

आप पतितपावनी श्रीगङ्गाजीके तटपर घूमते हुए अनूपशहर पहुँचे और वहाँ श्रीस्वामी अच्युतमुनिजी महाराजकी सेवामें रहकर उनसे वेदान्त-ग्रन्थोंका अध्ययन करने लगे। एक बार उनके साथ वर्धा गये। वहाँ छत्रपति श्रीशिवाजीके गुरु श्रीसमर्थ गुरु रामदासजी महाराजकी परम्पराका श्रीहनुमानगढ़ी नामक स्थान था। वहाँ श्रीसमर्थगुरु रामदासजी महाराजके समयसे ही 'श्रीराम जय राम जय जय राम' इस महामन्त्रका अखण्ड कीर्तन चल रहा था। आप उसमें सम्मिलित होने लगे और श्रीभगवन्नामामृतके पानसे आपका जीवन ही पलट गया। आपका मन वेदान्तसे हटकर भगवद्भक्तिमें लग गया और आपके हृद्देशपर श्रीभगवन्नामका एकछत्र साम्राज्य स्थापित हो गया।

वर्धासे आप पुनः अनूपशहर लौटे तो श्रीगङ्गाजीके तटपर विचरण करनेवाले अनेक संत-महात्माओंके दर्शनका लाभ उठाने लगे। कुछ ही समय बाद वहीं पूज्यपाद श्रीउड़ियाबाबासे भेंट हुई। इन दोनों महात्माओंमें अत्यधिक प्रेम हो गया। फलस्वरूप आप दोनों प्रायः साथ ही रहा करते थे। इन दोनों महात्माओंकी ख्याति बढ़ती गयी और दूर-दूरसे भक्त उनके दर्शनके लिये आकर सत्सङ्ग-भजन एवं संकीर्तनसे लाभ उठाने लगे। समय-समयपर श्रीहरिबाबाका भारतके अच्छे-अच्छे महात्माओंसे परिचय और प्रेम बढ़ने लगा।

श्रीहरिबाबा श्रीश्रीचैतन्य महाप्रभुके पद-चिह्नोंपर चलने-

वाले श्रीभगवन्नाम-प्रेमी महात्मा तो थे ही, दीन-दुखियोंका कष्ट देखकर आप अधीर हो उठते थे और प्राणपणसे उनके कष्ट-निवारणके लिये प्रयत्नशील हो जाते थे। एक बारकी बात है। आप बदायूँ जिलेके गवाँ गाँवके पास गङ्गा-तटपर पहुँचे। वर्षाके दिन थे। श्रीगङ्गाजीका जल समुद्रकी भाँति फैला हुआ था। किसानोंकी सहस्रों एकड़ भूमिकी फसल डूब गयी थी, कितने ही गाय-बैल बह गये थे। वहाँके निवासियोंके मनमें दुःख और चेहरे उदास थे। बाबाने वहाँ बाँध बँधवाकर सबकी विपत्ति दूर करनेका निश्चय किया।

उस समय अंग्रेजोंका शासन था। बाबाने सरकारसे प्रार्थना की; किंतु लाखों रुपयेका व्यय बताकर सरकारने बात टाल दी। पर बाबा निराश होनेवाले नहीं थे। बड़े ही साहसी और कर्मठ थे। 'हरि बोल'—श्रीभगवन्नामका घोषकर बाबाने स्वयं फावड़ा उठाया और टोकरी ली। फिर तो क्या कहना था, सहस्रों स्त्री-पुरुष फावड़े और टोकरियाँ ले बाबाके साथ बाँध बाँधनेके लिये मिट्टी फेंकने लगे। यह संख्या उत्तरोत्तर बढ़ती गयी तथा 'हरि बोल, हरि बोल' के सामूहिक उच्च घोषके साथ बाँध तैयार होने लगा। कुछ समय बाद तो कितने ही इंजीनियरोंने स्वेच्छापूर्वक उक्त बाँध-निर्माणके लिये अपनी निःशुल्क सेवाएँ समर्पित कर दीं। बाँध तैयार होता और श्रीभगवन्नामका कीर्तन होता जाता। इस प्रकार वर्षाके पूर्व ही उक्त बाँध तैयार हो गया। मनुष्य ही नहीं, पशुओंका भी कष्ट मिटा। कहते हैं, इस बाँधके निर्माणमें दीन-दुखी, रोगी, लँगड़े-लूले आदि जिसने, 'हरि बोल' बोलते हुए मिट्टी फेंकी, उन्हींकी कामनाएँ पूरी हुईं और सहस्रों नर-नारियोंका 'हरि बोल, हरि बोल' की ध्वनि करते हुए श्रमदानका दृश्य भी अभूतपूर्व था, जो कभी कहीं देखनेमें नहीं आया और सबके आगे सिरपर मिट्टीकी टोकरी रक्खे दौड़ते थे हरिबाबा और उच्च स्वरसे बोलते थे—'हरि बोल! हरि बोल!' और उसी दयालु एवं कर्मठ भगवन्नामके उपासक संतके नामपर उक्त बाँधका नाम पड़ा 'हरिबाबाका बाँध!'

बाँध निर्मित हो जानेपर बाबाने वहीं विशाल संकीर्तन-भवन एवं संतोंके लिये कुटियोंका निमाण कराया। कई मन्दिर भी बनवाये। उक्त पवित्र भूमिपर बाबाने अनेक महोत्सव तथा कथा-कीर्तन एवं सत्सङ्गका आयोजन किया। रासलीला एवं रामलीला होने लगी। 'हरि बोल'का कीर्तन एवं नगारेकी ध्वनि दूरतक फैलने लगी। उक्त स्थल परम पावन तीर्थ बन गया और दूर-दूरसे सहस्राधिक व्यक्ति प्रतिदिन आ-आकर स्नान, मन्दिरमें पूजन, संत-दर्शन एवं कथा-कीर्तनसे लाभान्वित होने लगे। बाबाने प्रायः सभी प्रख्यात महात्माओं एवं कथावाचकोंको वहाँ आमन्त्रित किया।

उस समय वहाँ बृहत् जन-समुदाय गाँजा-भाँग और शराब ही नहीं, अण्डे तथा मांस-मछली सभी सेवन करता था। इतना ही नहीं, चोरी आदि अपकर्म भी करता था। बाबा उनके चारित्रिक पतनसे बड़े दुखी थे। उन्होंने उन्हें समझाया। कथा-कीर्तन एवं सत्सङ्गमें आनेसे कितने ही लोगोंके दुर्व्यसन दूर हो गये, किंतु जब बाबाके किसी भी प्रयत्नसे कुछ लोगोंने मांस-मदिराका त्याग नहीं किया, तब बाबा उनके लिये बड़े दुखी और चिन्तित हुए। कोई मार्ग न देखकर वे अनशन कर बैठे। इस प्रकार उन लोगोंको विवशतः दुर्व्यसनसे मुक्त होना पड़ा। इस तरह प्रत्येक रीतिसे श्रीहरिबाबा जनता-जनार्दनके सुख ही नहीं, लौकिक एवं पारलौकिक अभ्युदयके लिये निरन्तर सजग और सचेष्ट रहते। दीन-दुखियोंके कष्ट-निवारणके लिये सदा तत्पर रहते।

सनातन-धर्ममें श्रीहरिबाबाकी अद्भुत निष्ठा थी। श्रीमन्महाप्रभु श्रीचैतन्यदेवको भगवान् श्रीराधाकृष्णका अवतार मानते तथा श्रीमहाप्रभुकी लीला भी कराया करते। आपके यहाँ जब भी रासलीला या रामलीला होती, आप अत्यन्त श्रद्धासे श्रीठाकुरजीको पुष्पहार पहनाते एवं चरणोंमें साष्टाङ्ग दण्डवत् करते और जबतक रासलीला या रामलीला होती, आप खड़े-खड़े बड़ी ही श्रद्धा एवं प्रेमसे स्वरूपपर चँवर डुलाया करते—पंखा झला करते।

संकीर्तन तो आपका बड़ा ही सुखद होता। हाथसे घड़ियाल बजाते हुए भगवन्नामका कीर्तन और नृत्य करते तो सभी कीर्तनकार आनन्दोल्लाससे पूर्ण हो जाते। बाबाका पूजोपकरणोंके साथ कीर्तन करते हुए मैया गङ्गाका दुग्ध-स्नान एवं भक्तिभावपूर्ण पूजन एवं आरतीके सुखद दृश्यकी कल्पना बस मन ही कर सकता है।

ग्रामवासियोंपर कोई विपत्ति आ जाती या कोई अपना दुखड़ा रोता तो बाबा कहते—'भैया ! तुम्हारे किसी पापसे गङ्गा मैया प्रसन्न नहीं हैं। अतएव अबसे तुम पाप न करनेकी प्रतिज्ञा कर उन्हें संतुष्ट कर लो। माता गङ्गाका पूजन करो एवं उन्हें गो-दुग्धकी धार चढ़ाओ। माँ प्रसन्न हो जायगी और तुम्हारी विपत्ति भी दूर हो जायगी।'

पुन्य एक जग महँ नहिं दूजा। मन क्रम बचन बिप्र पद पूजा॥

मानसकी इस अर्द्धालीका आप अक्षरशः पालन करते। ब्राह्मणोंकी पूजा एवं उन्हें आदर-सम्मान दिये बिना बाबा रह नहीं सकते थे। 'विप्र-पद-पूजा' जैसे उनका स्वभाव ही था। ब्राह्मण कथावाचककी पूजा कर आप सदा ही व्यासासनसे नीचे बैठकर बड़ी श्रद्धा और भक्तिसे कथा तथा उपदेश श्रवण करते। मान-सम्मान एवं प्रतिष्ठासे दूर रहकर दूसरोंको सम्मान देते । आपकी दृष्टिमें कोई छोटा-बड़ा नहीं था। फिर भी आप बड़े कहलानेवाले व्यक्तियोंसे अधिक-से-अधिक बचनेका प्रयत्न करते। उनकी ओर नेत्र भी नहीं उठाते।

कामिनी और कञ्चनसे दूर रहनेवाले बाबा जहाँ इतने सरल, सदय एवं भगवद्भक्त थे, वहीं वे दम्भ एवं पाखण्ड नहीं सहते थे। चेला-चेली बनाना भी उन्हें पसंद नहीं था। एक स्त्रीके दीक्षा लेनेकी प्रार्थनापर आपने तुरंत उत्तर दिया—'माँ, मुझे ही पता नहीं कि मेरा कल्याण होगा या नहीं ? फिर मैं तुम्हारा या अन्य किसीका दायित्व किस प्रकार ले सकता हूँ।'

बाबा श्रीकृष्ण, श्रीराम, श्रीदुर्गा और गणेश आदि विभिन्न देवताओंमें भेद नहीं मानते थे। वे सबका पूजन एवं सबकी स्तुति करते। सबमें एक ही परब्रह्म परमेश्वरको मानते थे। यद्यपि वे श्रीचैतन्य महाप्रभुको विशेष रूपसे मानते थे और इससे श्रीकृष्ण-नाम-संकीर्तन एवं रासलीला आदि करते-कराते रहते। आप रहते तो थे श्रीकृष्णाश्रम वृन्दावनमें, किंतु होशियारपुरके आपने गुरु-स्थानमें भी एक सुन्दर मन्दिर बनवाया था और उसमें बड़े ही आदर एवं सम्मानपूर्वक गुरुग्रन्थ-साहबकी स्थापना करायी थी। वहाँ भी ठहरा करते थे।

इधर कुछ दिनोंसे बाबा रुग्ण रहने लगे थे। चिकित्साके सभी प्रयत्न विफल होते गये। दिनाङ्क ३१ दिसम्बर १९६९ ई० को श्रीआनन्दमयी माँ आपको अपने साथ बाबा विश्वनाथकी मोक्षदायिनी पुरी काशीमें अपने आश्रममें ले गयीं और वहीं बाबाने दिनाङ्क ३ जनवरी सन् १९७० ई०को रात्रिमें एक बजकर चालीस मिनटपर श्रीगोलोकधामकी यात्रा की। उस समय वहाँ श्रीभगवन्नाम-कीर्तन हो रहा था।

दिनाङ्क ४ जनवरीको आपका शव टैक्सीसे अनूप-शहर लाया गया। दिनाङ्क ५ जनवरीको उसे भक्तोंके दर्शनार्थ बाँधपर रक्खा गया। बाबाके महाप्रयाणका संवाद विद्युत्-गतिसे सर्वत्र फैल गया और बालक, युवा, वृद्ध स्त्री-पुरुष सभी रोते-कलपते, आँसुओंकी धारा बहाते बाबाके अन्तिमदर्शन एवं अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करने पहुँचे। जगद्गुरु श्रीशंकराचार्यजी महाराजसहित कितने ही संत एवं विद्वानोंने उन्हें अपनी श्रद्धाञ्जलि भेंट की।

दिनाङ्क ६ जनवरीको दिनके ११। बजे श्रीभगवन्नाम-कीर्तनके बीच श्रीहरिबाबाके पार्थिव शरीरकी समाधि दे दी गयी। श्रीभगवन्नाम-कीर्तनका उच्च घोष होता ही रहा। बहुत देरतक होता रहा।

उस समय परम पूज्य बाबाकी आयु ८६ वर्षकी थी। पूज्य बाबाकी समाधिके समीप ही श्रीविष्णुमहायज्ञ, श्रीमद्भागवतकी सप्ताह-कथा, सहस्रों साधु एवं ब्राह्मणोंका भण्डारा तथा कीर्तन बड़े ही समारोहके साथ सम्पन्न हुआ। बाबा सबके मनमें बसे थे। आज उनका पार्थिव शरीर नहीं; किंतु आदर्श जीवन हम सबके सम्मुख है। हम उनके जीवनका अनुकरण कर सदाचार-सम्पन्न बन दीन-दुखियोंकी सेवा एवं प्रभु-प्राप्तिके लिये अपना सम्पूर्ण जीवन समर्पित कर दें, बाबाके प्रति हम सबकी यही सच्ची श्रद्धाञ्जलि होगी।

पढ़ो, समझो और करो

(१)

अभिमान-भञ्जक भोलेनाथ

मैंने १९६४ में प्रभुकी दयासे एम्० ए० भूगोलकी परीक्षा, विक्रम विश्वविद्यालयसे 'प्रथमश्रेणी प्रथम' में पास की। परिणामकी सूचना मुझे उल्हासनगरमें मिली, जहाँ मैं गर्मीकी छुट्टियोंमें घूमने गया हुआ था। कुछ ही दिनों बाद ईश्वरकी विशेष कृपासे उल्हासनगरमें ही 'उल्हास-नगर कालेज, उल्हासनगर'में सीधे Assistant Professor and Head of Geography Department के पदपर मेरी नियुक्ति हो गयी। परमात्माकी इस विशेष दया-को न समझ, न जाने क्यों, उस नियुक्तिके दिनसे मेरे दिल और दिमागमें 'अभिमान' का भयंकर भूत सवार हो गया। मैं इतना घमंडी बन गया कि बार-बार हर-एकसे अपने पदके बारेमें बताना गर्व समझने लगा और अपनेको बड़ा आदमी मानने लगा। इस झूठे घमंडने मुझे इतना गिराया कि अपने पदके परिचयके समय 'ईश्वरकी कृपा'का शब्द जोड़ना भी भूल गया। ऐसा लगता था, जैसे, जो कुछ भी हुआ है, वह सब मेरे परिश्रमका ही फल है। यह अभिमान मुझे प्रभुसे दूर ले जाने लगा—परंतु मेरे ईश्वरने मुझे कभी गैर नहीं समझा। वे मेरी इस भूल और मक्कारीका नाटक भलीभाँति देखते रहे। वे दयाके सागर हैं और सर्वोच्च न्यायाधीश भी। उन्होंने मुझे सही मार्गपर लानेके लिये दो वर्षके नाटकके बाद, मेरे गालपर एक हल्का-सा थप्पड़ मारा, जो उसी तेल-मालिशके सदृश था, जो एक माँ अपने नन्हें बच्चेके हितके लिये, उसके रोनेकी परवाह न कर, करती है। मेरी अचानक किन्हीं कारण-वश वह नौकरी छूट गयी। मेरा विवाह भी हो चुका था, एक नन्हा भी घर आनेवाला था। मेरी बूढ़ी माँ 'हृदय-रोग-पीड़ित' मेरे साथ थीं। मुझे कालेजका क्वार्टर भी एक महीनेके अंदर खाली करनेको कहा गया। मेरा अपना कोई नहीं था। मेरे सगे भाई ग्वालियर रहते हैं, जहाँ रहकर मैंने ए० एम्० तककी शिक्षा पायी थी। मेरी आँखोंके सामने धुंध-सा छाने लगा। मैंने कहीं नौकरीके लिये प्रार्थना-पत्र भी नहीं भेजा था; क्योंकि नौकरीका छूटना परम अनपेक्षित था। मैंने मकान और नौकरीकी तलाशमें भटकना शुरू किया। बहुत-सी 'इन्टरव्यू' दी, किंतु परिणामका पता नहीं चलता था। 'मराठी माध्यम' मेरी नौकरीके रास्तेमें काँटा बनकर चुभने लगा; क्योंकि जहाँ मैं नौकरी करता था, वहाँ सिर्फ अंग्रेजी माध्यम (English Midium) है और बम्बई-जैसे शहरमें भी उस समय भूगोल प्रचलित विषय नहीं था; क्योंकि भूगोल आवश्यक विषय नहीं है। मैं बहुत परेशान हो गया। जमा हुई रकम भी इन्टरव्यूके पोस्टल आर्डर्स भेजने, पोस्ट करने और रेल-किराये (Railway fares) आदिमें समाप्त हो चली। कुछ भी सूझ नहीं रहा। घरसे पैसे मँगानेकी शर्म आ रही थी। दूसरी ओरसे, मकानका मिलना, हवा और सस्ते किराये-की दृष्टिसे दुर्लभ हो गया। बहुतसे मकान देखे, किंतु भारी किराये और बहुत भारी रकम अग्रिम तौरपर देनेके कारण निराश होना पड़ता था। ऐसा लग रहा था कि मुझे सारे घरका सामान बेचकर अपने घर ग्वालियर जाना पड़ेगा। इस चिन्ताने मुझे बहुत कमजोर कर दिया था। मुझे एक ही रास्ता दिखायी दिया, वह था—'ईश्वरकी मौन प्रार्थना'। मैंने क्वार्टरमें लगी हुई भोलेनाथकी तस्वीरके सामने मौन रहकर मानस प्रार्थना की। आँसुओंके सिवा और कुछ भेंट नहीं चढ़ा सका। मन-ही-मन क्षमाकी भीख माँगने लगा। मुझे अपने अभिमानसे घृणा हो रही थी। मैं पश्चात्तापकी अग्निमें जल रहा था। मेरी सभी भूलें एक-एक करके मेरे सामने आने लगीं; किंतु मुझ मूर्खको क्या मालूम कि मेरे शंकर भगवान्, मेरे सच्चे पिता, एक नास्तिक रूठे बेटेका खास इंतजार कर रहे थे। प्रभु सचमुच परम पिता, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् और सर्वसमर्थ हैं। उन्होंने अब नाटकका दृश्य उसी समय बदला। जैसे ही आँखें खोलीं, देखा—मेरा एक विद्यार्थी एक सस्ते हवादार और कम किरायेके मकानका समाचार लिये मेरा इंतजार कर रहा था। कहना न होगा कि मनचाहा मकान मुझे क्वार्टर छोड़नेकी अन्तिम तारीखके पहले ही मिल गया। वह भी श्रीगुरुनानकजीके गुरुद्वारेके साथ और एक महात्मा श्रीरेवाचन्द नाथानीके नजदीक, जो बालब्रह्मचारी और भगवान्के सच्चे भक्त हैं। उन्होंने ही मुझे आदमी बनानेकी कोशिश की और उनके ही द्वारा

मुझे आपकी पुस्तकों तथा 'कल्याण' आदिकी महत्ताका ज्ञान हुआ।

अब रही नौकरीकी बात, मकान बदलते ही समाचार मिला कि उल्हासनगरके एक दूसरे कालेजमें, जो कि पहले साइंस कालेज था, आर्ट्स फैकल्टी (Arts faculty) के विषयोंको भी प्रारम्भ किया है। मैंने झटसे अर्जी दे दी और कैलासपतिकी असीम कृपासे मुझे प्रतिसप्ताह चार पीरियड होनेके बावजूद भी पूरे समयके लिये लेक्चरर (Full-time Lecturer in Geography) बनाया गया। दूसरे वर्ष भी ८ पीरियड (8 periods) होते हुए भी मुझे पूरे समयपर (full-time) ही रक्खा गया। यहाँ बताना आवश्यक होगा कि दस पीरियडतक पार्टटाइम लेक्चरर (10 periods तक Part-time Lecturer) रक्खा जाता है। इसी कालेजमें, जिसका नाम Smt. Chandibai College, Ulhasnagar-5 है, मुझे तीसरे वर्षके प्रारम्भमें Assistant Professor और Head of Department of Geography बनाया गया और साथ ही मेरी नौकरीको पक्का भी कर दिया गया। अब इसी कालेजमें यह मेरा चौथा साल चल रहा है और मुझे किसी भी प्रकारकी तकलीफ नहीं है। अब इस कालेजके Principal Dr. Ahuja भी मुझसे अति प्रसन्न हैं और मुझमें चाव लिया करते हैं। यह है प्रभुकी दयाका चमत्कार।

उपर्युक्त घटनासे बिल्कुल स्पष्ट है कि ईश्वरने किस प्रकार न्याय करके दयाका भी परिचय दिया। सचमुच इस न्यायसे मेरी कुछ भी हानि नहीं हुई; क्योंकि पहले कालेजसे गर्मीके तीन महीनोंकी छुट्टियोंकी तनख्वाह मुझे मिलती रही थी और छुट्टियाँ समाप्त होते ही उसी नगरमें मुझे तुरंत नौकरी मिल गयी। जो भी भटकनेका दुःख था, वह एक प्रभुजीका नाटक था अपनी ओर बुलाने और मुझे मनुष्य बनानेके लिये। मैंने इस घटनासे सचमुच बहुत पाया और सीखा।

अब जब कोई भी मेरी post या rank के बारेमें पूछता है, तब मैं बतानेमें कुछ डर-सा महसूस करता हूँ कि कहीं फिर अभिमान तो नहीं कर रहा हूँ। इसका यह तात्पर्य नहीं है कि मुझे अभिमानने बिल्कुल छोड़ दिया है, परंतु यह अवश्य कह सकता हूँ कि परमपिता परमात्मा भगवान् शंकर भोलेनाथ कैलासपतिकी अनन्त कृपासे यह अभिमानका 'भूत' कभी-न-कभी और किसी-न-किसी दिन अवश्य भाग जायगा और परमात्मा मुझमें भरे हुए अन्यान्य अवगुणोंका भी नाश करेंगे।

बोलो भोलेनाथकी जय।

—एफ० एस० ठारवानी,

ब्लाक ए—७०१।१४०१ उल्हासनगर—५ (थाना)

(२)

अच्छी नीयतका फल

एक बड़े जौहरी थे; रजवाड़ोंमें उनकी बड़ी आवा-जाही थी। जरूरत होते ही उन्हें महलोंमें बुलाते और जवाहरात खरीदते। इनकी दूकान भी बहुत बड़ी और प्रसिद्ध थी। चार बड़े शहरोंमें इनकी दूकानें अच्छी तरह चल रही थीं। दूकानोंमें कीमती जवाहरात भीतरके कोठेकी तिजूरीमें रखते, बिचले हिस्सेमें चालू चीजें रखते और बाहरी हिस्सेमें फैशनकी चीजें सजी रहतीं। इनमें बहुत-सा नकली माल भी होता। एक बार एक महिलाने उनके यहाँसे केवल पैंतीस रुपयेमें ही एक मोतीकी माला खरीदी। चढ़ाव-उतारके सरस मक्खन-जैसी झाँईवाले मोती और सुन्दर घेरेवाली मखमलकी पेटी—कौन न खरीदता? महिला उस हारको बहुत बार पहनती, पर किसीको उसके दाम नहीं बताती। सिर्फ बड़े जौहरीका प्रसिद्ध नाम बतलाकर मुसकरा देती।

एक दिन वह माला टूट गयी और मोती बिखर गये। बहुत परिश्रम करके इकट्ठे तो किये, पर एक मोती कम रह गया। अतः मालाके मोतियोंका मेल नहीं हो सका। अन्तमें उसने सोचा कि 'चलूँ—जौहरीके पास और उन्हींसे यह काम करवाऊँ। वे जरूर ही पहले-जैसी ही सुन्दर माला बना देंगे।' उसने जौहरीके पास जाकर कहा। जौहरीने स्वीकार किया और कहा कि 'यह माला हमारी ही बेची हुई है। अवश्य पहले-जैसी ही बना दी जायगी; परंतु एक मोती, जो कम हो गया है, उसे लगानेकी कीमत तीन सौ रुपये लगेगी।'

वह महिला तो विचारमें पड़ गयी, यह कैसे माना जाय? उसने खुलासा करते हुए कहा—'पूरी मालाके दाम तो केवल पैंतीस रुपये दिये थे। अब आप एक मोतीके तीन सौ रुपये माँग रहे हैं, यह कैसी बात है?' तब

जौहरीने कहा—'बहन ! तुम्हारा कहना झूठ नहीं है। बात यह हुई कि यह कीमती माला हमारे नौकरकी भूलसे तिजूरीमें रखनेके बदले बाहर रख दी गयी और तुम इतनी भाग्यशालिनी निकली कि पानीकी कीमतपर सच्चे मोतियोंकी माला नकली मोती समझकर खरीद कर ले गयी। जब भूल मालूम हुई तो नौकरको अलग कर दिया गया। पर अब नया मोती सस्ती कीमत कैसे दिया जाय ?'

यह सुनकर महिला बहिन स्तब्ध रह गयी। क्या इतने दिनोंतक किसी महारानीके पहनने योग्य मँहगा हार मैंने पहना था ? अब उसे पता लगा कि इस मालाकी इतनी तारीफ क्यों होती थी ? किंतु पापीके साथ रहनेपर जैसे पुण्यात्मापर भी शङ्का हो जाती है, वैसे ही गरीबके सङ्गसे मूल्यवान् वस्तु भी कम कीमतकी हो जाती है। यों थोड़ी देर विचार करनेके बाद बहनने कहा—'होगा, भूल तो सभीसे होती है। आपने यह माला बेची नहीं, यह तो भूलसे दे दी गयी। अतः अब इसे वापस रखिये और इतना कीजिये कि उस नौकरको कामपर रख लीजिये।' यों कहकर बहन चल दी। पर जौहरीने रोककर कहा—'यों नहीं जाना होगा। आपने जैसी ऊँची खानदानी बतायी, वैसी हमें भी रखनी चाहिये।' यों कहकर जौहरीने एक हीरेकी अँगूठी बहनको भेटमें दी। नौकरको फिरसे कामपर रख लिया गया। यों अच्छी नीयतके फलस्वरूप तीनों प्रसन्न हो गये। (अखण्ड आनन्द)

(३)

कर्तव्यपालनका नमूना

घटना अगस्त सन् ६९ की है। मैं आगरासे लखनऊ आनेवाला था। सीटी स्टेशनसे तीन बजे एक्सप्रेस गाड़ी लखनऊके लिये आनेवाली थी। मैं दो ही बजे स्टेशन पहुँच गया और गाड़ीके समयके बारेमें इधर-उधर पूछताछ करता रहा। गाड़ी आनेमें देर थी, अतः मैं काफी देरतक प्रतीक्षालयमें बैठा रहा।

जब टिकट बँटने लगे तो मैं भी उठकर खिड़कीके पास गया। बाबूसे लखनऊका टिकट माँगा तथा पैसोंके लिये कुर्तेकी जेबमें हाथ डाला तो पैरोंके नीचेकी जमीन निकल गयी। जेबमें पूरा हाथ चला गया था। किसी जेबकतरेने यह कृपा की थी। मेरे काटो तो खून नहीं। लखनऊ आनेके लिये मेरे पास एक पैसा भी नहीं रह गया था। बिना टिकट चलना खतरेसे खाली नहीं था। खतरा न भी होता तो यह एक वैधानिक अपराध था, जिसे करना मेरे वशकी बात नहीं थी।

आगरेमें मेरा कोई परिचित मित्र या रिश्तेदार भी नहीं था, जिससे रुपया लिया जा सकता और उसी गाड़ीसे लखनऊ आना भी आवश्यक था। परिस्थितिकी भयंकरता सोचकर मैं रुआसा हो गया। थोड़ी दूरपर एक सज्जन बैठे हुए मेरी हालत देख रहे थे। वे उठकर मेरे पास आये और सारी कैफियत पूछने लगे। मैंने भर्राये हुए गलेसे सारी परिस्थिति उन्हें बतला दी। उन्होंने आगरासे लखनऊ तकका किराया पूछा। एक्सप्रेसका किराया दस रुपया पचीस पैसे (१०.२५) थे। मैंने उन्हें बता दिया। वे सज्जन गये और लखनऊका टिकट अपने पैसोंसे खरीद लाये। टिकट मेरे हाथमें पकड़ाकर जाने लगे। मेरे हृदयमें प्रसन्नताकी लहर दौड़ गयी। मैंने उनसे कहा—'आप अपना पता नोट करवा दें, मैं घर जाकर आपके पैसे भेज दूँगा।' उन्होंने नाम-पता बतानेसे इनकार किया और कहा—'रुपये भेजनेकी आवश्यकता नहीं, मैंने केवल अपना कर्तव्य-पालन किया है।' इतना कहकर वे रुके नहीं, तुरंत चले गये।

आजके स्वार्थी युगमें ऐसे परोपकारी एवं दयालु सज्जन विरले ही मिलते हैं। भगवान् उनका मङ्गल करें।

—सुन्दरलाल 'अरुणेश'

(४)

ईमानदारीकी हद

शहरमेंसे जो चीजें खरीदनी थीं, उनमें एक खटपटी (सम्भवतः बिना खूँटीकी पट्टीवाली खड़ाऊ) भी थी। मैं गाड़ीसे उतरकर खटपटीकी खोजमें सीधे बाजारकी ओर चल दिया। रास्तेमें एक ओर बैठे हुए एक लड़केपर मेरी नजर पड़ी। वह मध्यम कदका जवान था और बाँसकी खपच्चियाँ, साँकलें, खटपटी तथा दाँतुन आदि रक्खे उन्हें बेचनेको बैठा था। वहाँ जाकर मैंने एक खटपटी हाथमें ली और कीमत तै करनेके लिये उससे पूछा—'बोल, क्या लेगा इसका ?'

खटपटी खरीदनेका मेरे लिये यह पहला ही अवसर था। मुझे पता ही नहीं था कि इसकी कम-से-कम कितनी कीमत

होती है। उसने दो रुपये कीमत बतायी तो मैंने, चार-आठ आने कम देने पड़ें, इस दृष्टिसे रोबके साथ उससे कहा—'इस ज़रा-सी पतरीके दाम कहीं दो रुपये हुआ करते हैं, जरा आदमी देखकर बात कर।'

अन्तमें डेढ़ रुपयेमें खटपटी खरीदकर तथा बाजारका काम निपटाकर मैं अपने मित्रके घर गया। बात-ही-बातमें बाजारसे क्या खरीदा, इसकी चर्चा चली, उसीमें खटपटी-की बात भी आ गयी। डेढ़ रुपया दाम सुनकर मेरे मित्र तथा उनकी पत्नीको अचम्भा हुआ। उन्होंने बताया कि 'इसके दाम तो सिर्फ आठ आने हो सकते हैं। रुपया वापस प्राप्त करनेकी इच्छासे मैं वहाँसे जल्दी ही चल दिया और जहाँसे खटपटी खरीदी थी, वहाँ जाकर खड़ा हो गया; परंतु वहाँ वह लड़का नहीं दिखायी दिया। उसकी जगह एक वृद्ध डोकरा बैठा था। उसके सामने भी वही चीजें पड़ी थीं; मैंने एक खटपटी उठाकर उससे उसके दाम पूछे।

आठ आने दाम सुनकर मैं तो सहम गया। फिर मैंने खटपटी निकालकर बूढ़े काकाको दिखाते हुए कहा—'काका! इस खटपटीके क्या दाम होने चाहिये?'

खटपटीको अच्छी तरह देखनेके बाद बूढ़ेने कहा—'साहब! आठ आने। पर इसे आप कहाँसे लाये? यह तो मेरे हाथकी चीज है।'

खटपटी खरीदनेकी सारी बातें मैंने काकाको बतलायीं। पर वह यह माननेको तयार नहीं था, लड़का उसीका था। पर वह उस समय वहाँ था नहीं; उसने झोपड़ीमेंसे लड़के-को बुलाया और एक न्यायाधीशकी तरह पूछने लगा—'पुंजा! इस खटपटीके इन साहबसे तुमने कितने पैसे लिये थे? सच बोलना।'

पुंजा मानो मुझे पहचानता ही न हो, ऐसा मान करके साफ झूठ बोल गया—'बापा! इन साहबको तो मैंने खटपटी दी ही नहीं थी।'

यह झूठी बात काकाको सहन नहीं हुई, उसका खून उबल उठा। उसने लड़केको बहुत डाँटा—धमकाया।

कुछ देरके बाद शान्त होनेका प्रयत्न करके बूढ़ेने कपड़ेकी छोटी-सी थैलीमेंसे एक रुपया निकालकर मेरे सामने रख दिया। मैंने लेनेसे इन्कार करते हुए कहा—'काका! अब मुझे संतोष है, अतः मैं प्रसन्नताके साथ यह रुपया तुम्हें चाय-पानीके लिये दे रहा हूँ।'

तुरंत ही उसने दृढ़तासे कहा—'भगवान्की कृपासे अभीतक कभी चाय-पानीके बिना नहीं रहा हूँ।'

हरामकी पाई भी लेनेको वह तैयार नहीं था। मैं मन-ही-मन काकाकी ईमानदारीकी वन्दना कर रहा था। पर उसके सामने मेरी चली नहीं। रुपया मुझे वापस लेना ही पड़ा। स्टेशनपर गाड़ी आ गयी थी। मैंने धीरेसे रुपया पुंजाकी जेबमें सरका दिया और स्टेशनकी तरफ चलना शुरू किया। चाल तेज की। परंतु स्टेशनतक पहुँचनेके पहले ही काकाकी गम्भीर दृढ़ हृदयस्पर्शी वाणी अस्फुट शब्दोंमें मेरे कानमें गूँज उठी—

अरे! खड़े रहिये, रुकिये साहब! पैसे लेते जाइये। मेरी सौगंद है, मुझे ये पैसे नहीं पचेंगे। कलियुगका तूफान सब खा जायगा। साहब—रुकिये। (अखण्ड आनन्द)

—अमृत सुथार

(५)

'श्रीरामरक्षास्तोत्र'का अमित प्रभाव

१

मैं 'रामरक्षास्तोत्र'को कुछ साल पहले सिद्ध कर चुका था। इसे सिद्ध करना बिल्कुल आसान है। नवरात्रमें, नौ दिनोंतक नित्य ११ पाठ करनेसे सिद्ध हो जाता है। सन् ६६ में अकस्मात् कुछ बड़े अधिकारी विरुद्ध हो गये। बिना किसी पूर्व सूचनाके एक दिन संध्या ५ बजे हमारी दूकान सील कर दी गयी तथा भाईसाहबके विरुद्ध केस तैयार करके उन्हें टाउनथाना इन्चार्जके हाथमें सौंप दिया गया।

हमलोग तो अचानक आयी हुई विपत्तिसे किंकर्तव्य-विमूढ़ हो गये। आज कोर्टका समय प्रायः समाप्त हो चुका था। अतः भाईसाहबकी जमानतका भी होना कठिन था। मुझको कोई सहारा नहीं सूझा तो मैंने 'रामरक्षास्तोत्र'का पाठ शुरू कर दिया। कोर्टसे सभी वकील तथा अफसर अपने-अपने निवासकी ओर जाने लगे थे।

अब देखिये 'रामरक्षास्तोत्र' का तात्कालिक प्रभाव।

दारोगाजीके मनमें आयी कि अभी इन्हें कोर्टके सुपुर्द

कर देना ही ठीक है। अतः उन्होंने एक सिपाहीके साथ भाईसाहबको कोर्टमें भेज दिया। कोर्ट उठ रहा था। मैं मन्त्र जपता हुआ एक वकीलके घर पहुँचा। स्थितिको स्पष्ट किया। उन्होंने भी आज जमानत होनेमें निराशा व्यक्त की। फिर भी वे मेरे साथ वापस कोर्टकी ओर मुड़े। अभी हम कोर्टमें पहुँचे ही थे कि पता लगा कि एक उच्च अधिकारी महोदयने चेम्बरमें बैठे हुए ही जमानतकी मंजूरी दे दी है। आश्चर्य यह कि जिन लोगोंसे हमारी घनिष्ठता नहीं थी, वे ही भाईसाहबके जमानतदार हुए हैं। भाईसाहब उसी रातको पटना चले गये।

दूसरे ऊँचे अधिकारियोंको जब मालूम हुआ कि अभियुक्तकी आसानीसे जमानत हो गयी है तो उन्होंने उक्त जमानत मंजूर करनेवाले सज्जनको बहुत उलाहना दिया। फिर हमारी दूकानका लायसेन्स रद्द कर दिया गया और उसकी सूचना हमारे पास भेज दी गयी।

भाईसाहब पटनामें आपूर्ति विभागके मिनिस्टर आदिसे मिले। परंतु उन्होंने हमें सहायता देनेसे इन्कार किया। उन्होंने बताया कि 'विभागीय अफसरोंकी जो रिपोर्ट आयगी, उसीको मान्यता दी जायगी। आपके ऊपर जो मिलावटका चार्ज है, उसको हम कैसे नजरंदाज कर सकते हैं।'

मिलावटके संदेहमें शहरके चार व्यापारियोंके नमूने जाँचमें गये हुए थे। इसी बीच जाँचकी रिपोर्ट आ गयी। उसमें हमारी दूकान तथा शहरकी एक और दूकानका माल शुद्ध निकला था। इधर हमने वह रिपोर्ट विभागीय मिनिस्टरके पास भेज दी। इस रिपोर्टको पढ़कर मिनिस्टर महोदय वस्तुस्थितिसे परिचित हो गये तथा उन्होंने तुरंत आदेश दिया कि 'इस दूकानको अविलम्ब बन्धनमुक्त किया जाय तथा शीघ्र इन्हें विक्रीका लाइसेन्स दिया जाय। फिर इसकी सूचना विभागीय मिनिस्टरको दी जाय।'

इस आदेशसे विरुद्ध विचार रखनेवाले अधिकारियोंको बड़ा दुःख हुआ। जिस हाथसे प्रतिष्ठानके विरुद्ध आदेश लिखे गये थे, उसी हाथसे मजबूर होकर प्रतिष्ठानके पक्षमें आदेश लिखना पड़ा। दैव जो चाहता है सो सिरपर चढ़कर करा लेता है। यह सब सफलता हमें निस्संदेह नित्य 'रामरक्षास्तोत्र'के पाठसे मिली; क्योंकि जिलेके सर्वोच्च अधिकारियोंके मन्तव्योंपर विजय पाना किसी अन्य उपायसे हमारे लिये असम्भव था।

—कृष्णाधार

२

हमारे ऊपर एक मिथ्या मुकद्दमा लगा दिया गया। जब हम सब तरहसे निराश हो गये, तब आपसे पत्र-व्यवहार किया और आपने 'श्रीरामरक्षास्तोत्र' भेजा और लिखा कि 'नवरात्र'में यह सिद्ध होता है। पर आपके इस आज्ञानुसार कि 'जरूरतमें किसी भी शुक्लपक्षकी प्रतिपदासे नवमी तक ११ पाठ प्रतिदिन किये जा सकते हैं'—मैंने पाठ किया। मेरे पास रामरक्षास्तोत्र दि० ६-११-६९ को पहुँचा। दि० ९-११-६९ को दीपावलीके दिन इसका महालक्ष्मीजीके समीप बड़े प्रेमसे पाठ किया। दूसरे दिन प्रतिपदासे पाठ शुरू कर दिया और दि० १८-११-९६ यानी मङ्गलवार नवमी (आँवला नवमी) को पाठ समाप्त किया। दि० २०-११-६९ को कोर्टमें मुकद्दमेकी तारीख थी। मैंने लिखकर जवाब पेश किया और पेशकार साहबसे २७-११-६९ की फैसला (Judgement) सुनानेकी तारीख लेकर घर आया। दूसरे दिन दि० २१-११-६९ को हमारे वकीलोंने बहस करके श्रीमान् मैजिस्ट्रेट महोदयको अच्छी तरह समझा दिया और सुनवाईके दिनकी इंतजारीमें रहे।

मैं तो ठीक २७-११-६९ को परमपिता श्रीजानकीवल्लभजीको प्रणाम करके घरसे चला और ४ बजकर १५ मिनटपर मैजिस्ट्रेट साहबका फैसला सुननेका इंतजार करता रहा। श्रीरामरक्षास्तोत्रके आखिरी श्लोक—

राम रामेति रामेति रमे रामे मनोरमे।
सहस्रनाम तत्तुल्यं रामनाम वरानने॥

—का जप करता रहा।

४ बजकर १५ मिनटपर मैजिस्ट्रेट महोदय बाहर आये और मुझसे पूछा—'क्या आप ही श्रीनागरमल अग्रवाल हैं ?' मैंने कहा—'जी हुजूर !' कोई एक मिनटके बाद उनके श्रीमुखसे यह निकला कि 'आप रिहा हुए।' मैंने उनको हाथ जोड़कर प्रणाम किया और अपने भगवान्की तथा उनकी शक्तिकी मन-ही-मन खूब सराहना करता हुआ घर लौट आया। मेरे शोकाकुल परिवारको इसकी सूचना पहले ही मेरे द्वितीय पुत्रने दे दी थी। मेरे जानेपर मैंने सबको अति हर्षित और प्रफुल्लित पाया।

बोलो जानकीवल्लभ श्रीरामचन्द्रजीकी जय जय।

—नागरमल अग्रवाल

(६)

आत्मदीपकके प्रकाशमें

सोसायटीमें रहनेको आये हमें अभी थोड़े ही दिन हुए थे। पत्नीने तो पड़ोसियोंके साथ मित्राचारी कर ली। बच्चे सहज स्वभाववश बालकोंके साथ बाहर खेलते थे। रह गया मैं···सो अकेला बैठा खिड़कीसे बाहरकी दुनियाको देखता रहता।

राह चलते विविध लोग मुझे अच्छे लगते, पर सबके पीछे एक बूढ़ा भिखारी भीख माँगता रहता, वह मुझे अच्छा न लगता। उसके मुखकी ओर देखते ही दृष्टि हट जाती। मनमें गुस्सा आ जाता। शरीरको किसी तरह बटोरकर वह गलियोंमें पड़ा रहता और रात्रिको कहीं भी जानेके बजाय वहीं मस्तरामकी तरह सोया रहता।

वह कुछ अजनबी-सा था। एक दिन अपनी लाठी टेकते हुए उसने आकर मेरे घरका दरवाजा खटखटाया। मैंने दरवाजा खोला तो उसने मेरे बच्चेको मेरी तरफ भेजकर कहा—'भाई! बच्चेको यों भटकते मत छोड़ा करो, कहीं मोटरसे दब जायगा।'

मैं क्रोधसे तमतमा गया। मुझे लगा—इन लोगोंकी यही तो परिचय बढ़ानेकी पद्धति है, अब हुआ इसका चक्कर शुरू।

इसी प्रकार फिर एकाध बार मेरी पत्नीने आकर मुझसे शिकायत की—'वह बूढ़ा फिर बच्चेको लाकर यहाँ छोड़ गया।' मेरा क्रोध तो अब सीमा पार कर गया।

मैंने बच्चेको धमकाकर पूछा, तो उसने (झूठा) जवाब दिया—'मैं तो वहाँ गया ही नहीं था।' मैंने मन-ही-मन निश्चय कर लिया कि अबकी बार बूढ़ा फिर आया तो अच्छी तरह खबर ली जायगी।

रविवारको फिर ऐसा ही हुआ। मैंने उसे रोका और धमकाकर कह दिया—'खबरदार, जो मेरे बच्चेके हाथ लगाया तो···वह जायगा तो तेरे बापका क्या ले जायगा?'

बस, इसके बाद कोई भी शिकायत नहीं आयी। एकाध महीना बीत गया, मैं निश्चिन्त हो गया।

एक दिन अकस्मात् दोपहरको पत्नीका फोन आया—'जल्दी आओ, वह भिखारी दुर्घटनाग्रस्त हो गया है। अपनी बेबी मोटरके नीचे दबती बच गयी—उसको कोई खास चोट नहीं लगी।'

'बेबी बच तो गयी न?' बस, अब मेरे जानेकी क्या जरूरत थी। फिर आज वेतनका दिन था। मैं दोपहरको नहीं गया। शामको घर गया तो वहाँ ताला बंद था। अब तो मुझे घबराहट हुई। पड़ोसीसे पता लेकर मैं टैक्सी करके सीधा अस्पताल पहुँचा।

अंदर जानेपर मेरे पैर रुक गये। एक पलंगपर बेबी और दूसरे पलंगपर वह भिखारी है और दोनोंके बीचमें मेरी पत्नी बैठी है। मुझे देखकर इशारेसे पास बुलाकर उसने थोड़ेमें कहा—

'इन भाईने अपनी बेबीको मोटरके नीचे दबनेसे बचा लिया, पर उसे बचानेमें इनका पैर सहज ही कुचल···। बेबीका घाव तो कुछ दिनोंमें भर जायगा, पर इनका पैर···' कहते-कहते उसका गला भर आया।

मेरा हृदय भी भर आया। इसी बीच मैंने बूढ़े भिखारी-को कहते सुना—'कुछ नहीं, भाई—यह मेरी भी बेटी है। मेरा बेटा इसी तरह दबकर समाप्त हो गया था। बस, दुनियामें मैं अकेला ही हूँ। अब दूसरे किसीके लालको यों दबकर न मरना पड़े, इसका ध्यान रखता हूँ। वह जहाँ होगा, भगवान् वहाँ उसे शान्ति देंगे।'

एकाध महीनेमें उसे भी छुट्टी मिल गयी। वह मेरे घर आया और हाथ जोड़कर कहने लगा—'भाई! अब मैं तुमसे छुट्टी लेता हूँ, परंतु जाते-जाते···' वह रुक गया। मैंने समझा, इसे पैसोंकी दरकार होगी। मैंने जेबमें हाथ डाला—

'कहाँ जाओगे—यहाँ रहनेमें क्या आपत्ति है'—पैसे बाहर निकालते हुए मैंने कहा। उसने मेरे हाथको वापस ठेलते हुए कहा—'आप अभी मुझे पहचान नहीं सके हैं—भाई! दुनिया विशाल है। तुम्हारा आत्मदीपक प्रकाशित हो गया है। अब मेरे इस दीपकमें जबतक जीवन है, तबतक बड़े-बड़े रंग खिलनेवाले हैं।' इतना कहकर वह वापस लौट गया। साथ ही मेरी आत्माको जगाता गया। उसकी पीठकी ओर देखता हुआ मैं खड़ा रहा। उसकी लाठीकी ठप-ठप आवाज सुनायी दे रही थी। एक पैरसे भी वह ठीक चल रहा था। (अखण्ड आनन्द)

—हिम्मतलाल ऊठेव

(७)

श्रीहनुमानचालीसा और श्रीहनुमानबाहुकके पाठकी महिमा

'भारताजिर' नामक बंगलाकी साप्ताहिक पत्रिकाके गत ३ दिसम्बर १९६९ के अङ्कमें श्रीहनुमानचालीसाके तथा श्रीहनुमानबाहुकके पाठकी महिमाकी कई घटनाएँ छपी हैं। उनमेंसे कुछ नीचे दी जाती हैं—

अभीष्ट सिद्धि

दो वर्ष पहले नागपुरसे एक डाक्टरने लिखा था। यहाँ एक कम्पाउण्डर काम करता है। उसकी बदलीका आदेश आ गया, उसने बड़ी मुश्किलमें पड़कर दरखास्त दी—'मैं गरीब आदमी हूँ,मेरे बच्चे यहाँ पढ़ते हैं। बड़ी कठिनतासे काम चलाता हूँ। मेरे लिये दो जगहका खर्च चलाना असम्भव है और सबको ले जानेमें भी असुविधा है। दया करके मुझे यहीं रहने दिया जाय।' दरखास्त नामंजूर हो गयी और आदेश आ गया कि 'अमुक तारीखको कार्य-भार (चार्ज) देकर चले जाओ। वहाँ कामपर हाजिर होनेके बीचमें आठ दिनकी छुट्टी ले सकते हो।' वह बेचारा मेरे पास आकर दुःख प्रकट करने लगा। मैंने उसको नित्य श्रीहनुमानचालीसा और संकट-मोचनका पाठ करनेको कहा। चार-पाँच दिनोंमें ही उसकी बदली रद्द हो गयी। उसने बड़े आनन्दसे आकर मुझे प्रणाम करके सब बातें बतायीं। वह पूर्ववत् काम कर रहा है।

परीक्षामें उत्तीर्ण होना

कुछ वर्षों पहलेकी बात है। उत्तरप्रदेशके शाहजहाँपुर जिलेके एक वकीलकी कन्या इलाहाबाद विश्वविद्यालयमें बी० ए०में पढ़ती थी। वह होस्टलमें रहती। लगातार दो वर्षतक पास नहीं हुई। तब उसके पिताने उसे डाँटकर पत्र लिखा—'इतना खर्च करनेपर भी तू पढ़ती नहीं, कहानियोंकी किताबें पढ़कर समय खोती है क्या ?' इत्यादि।

उन दिनों प्रयागमें माघ-मेला था। लड़कीने मेलेमें जाकर एक साधुको प्रणाम करके कहा—'साधु बाबा ! मैं परीक्षामें पास न हो सकी, इसलिये पिताजीने मुझे बहुत डाँटा है, आप कृपा करके मुझे पास करा दें।' साधुबाबाने कहा—'श्रीहनुमान्‌जीको पुकारो और श्रीहनुमानचालीसाका पाठ करो। हनुमान्‌जी बड़े दयालु हैं—कातर पुकार कभी निष्फल नहीं होती।' इतनेमें एक आदमी आकर साधु बाबासे कहा—'अच्छा, सुन लें यह क्या कहता है।' लड़कीने देखा, एक आदमीने आकर साधु बाबाको प्रणाम करके बैठ गया। उसने कहा—'मैं मुटियाका काम करके संसार चलाता हूँ। मेरे एक लड़केको अविराम ज्वर हो गया। इलाज कराना मेरी ताकतके बाहर है। मैं साधु बाबाके पास आया। साधु बाबाने कहा—'श्रीहनुमान्‌जीके मन्दिरमें जाकर रोकर उन्हें पुकारो और हनुमानचालीसाका पाठ करो।' मैं और मेरी स्त्री दिनमें तीन बार पाठ करते हैं। आज दो दिनसे लड़केको ज्वर नहीं है। वह कहने तथा यह पूछने आया हूँ कि उसे पथ्यमें रोटी दी जाय या नहीं।

लड़कीने यह सुनकर साधु बाबाको प्रणाम किया और घर जाकर वह प्रतिदिन दो बार हनुमानचालीसाका पाठ करने लगी और बी० ए०की परीक्षामें पास हो गयी। यह सुनकर उसके भाईने भी श्रीहनुमानचालीसाका पाठ किया। वह पिछले वर्ष पास नहीं हुआ था। इस वर्ष सहज ही पास हो गया।

पागलपन मिट गया

१९६५ की बात है। कलकत्तेके ट्रुथ (Truth) प्रेसके श्रीअजितकुमार चक्रवर्ती (रामबाबू) को बँडिशाके किसी घरमें कोई बुला ले गया। उस घरमें एक बहू पागल हो गयी थी, उसके लिये शान्ति-स्वस्त्ययन कराना था। श्रीचक्रवर्ती महाशयने वहाँ जाकर श्रीहनुमानचालीसाका पाठ किया और 'ॐ श्रीहनुमते नमः'—मन्त्रका जप किया। रोगिणी जिस कमरेमें थी उसकी दीवालपर 'जय श्रीसीताराम श्रीहनुमते नमः' लिख दिया। पाँच दिनके बाद पता लगा कि रोगिणी एकदम ठीक हो गयी है।

भूतबाधा दूर हो गयी

श्रीजीवनकृष्ण विश्वासने शास्त्रधर्म-प्रचार-सभाके एक कार्यकर्ताको बताया—हम लोगोंका निवास बसिरहाट महकमेके टाकी नामक स्थानमें है। मैं कलकत्तेमें नौकरी करता हूँ। मेरे बड़े भाईकी बीमारी सुनकर मैं घर गया। देखा—भाईसाहेब तो कुछ ठीक हैं, पर भतीजा शैल पागल हो गया है। वह ईस्टर्न रेलवे, सियालदहमें काम करता है।

मैं टाकीसे कलकत्ते जाकर रेलवे आफिसमें उसके लिये एक महीनेकी छुट्टीकी दरखास्त करके आया हूँ।

बातों-ही-बातोंमें पता लगा कि टाकीमें एक बुढ़िया कहती है कि उधर एक आदमीने बड़के पेड़में गलेमें रस्सीकी फाँसी लगाकर आत्महत्या की थी। शामके बाद उस रास्तेसे जानेपर भूतबाधा हो जाती है। शैलको उस रास्ते जाते देखा गया है, इससे अनुमान होता है—भूतबाधा हो।

मेरे एक हितैषी और शिक्षक महोदयने मुझसे कहा कि नीचे लिखी अर्धालीका जितना हो सके, जप करो—

भूत पिसाच निकट नहिं आवै। महावीर जब नाम सुनावै॥

—और कम-से-कम प्रतिदिन दो बार हनुमानचालीसाका पाठ करो। सुनते ही मैंने जप शुरू कर दिया और दिनमें तीन बार मैं हनुमानचालीसाका पाठ करने लगा।

चार,दिनोंके बाद मेरी आफिसमें एक युवकने आकर पूछा—'काका कहाँ हैं ? दया करके उन्हें बुला दें।' जिनसे पूछा था—वे बोले—'तुम्हारे काका ? क्या जीवन दादा ?' उसने कहा—'जी हाँ।' उससे पूछा गया—'उनका भतीजा, बीमार हो गया था, वह अब कैसे है ?' उसने उत्तर दिया, 'मैं ही बीमार हो गया था, अब एकदम ठीक हो गया हूँ। कलसे आफिस जाऊँगा। अनहोनी बात हो गयी है।'

बाहुमूलका दर्द मिट गया

'ट्रू थ' (Truth) पत्रिकाके सम्पादक श्रीशिशिर बाबूका छोटा पुत्र श्रीमहादेव बाहुमूलके दर्दसे बहुत ही कष्ट पा रहा था। दवासे कोई विशेष लाभ नहीं हुआ। एक सज्जनने उसे श्रीहनुमानबाहुकका प्रतिदिन पाठ करनेको एवं श्रीसीतारामजी और श्रीहनुमान्‌जीकी कातर प्रार्थना करनेको कहा। उसने केवल तीन-चार दिन पाठ किया—वह एकदम ठीक हो गया।

(८)

कुछ उपयोगी प्रयोग

१

१. बिच्छूका विष उतारनेके अद्भुत योग

(क) कैसा भी बिच्छू किसी भी समयमें काटे, उसपर औंगा* की जड़ घिसकर लेप दीजिये। तुरंत लाभ होगा। औंगा बरसातमें उगनेवाली एक बूटी है। उसके पत्ते गोल तथा छितरे हुए होते हैं। उसमें ½ फुटसे लेकर १ फुटतक लंबी बाली-(दंगी-) सी निकलती है, जिसपर दोनों तरफ भरभूँट-से चिपटे होते हैं। इसके फूल नीले रंगके बहुत छोटे-छोटे होते हैं। बरसातमें प्रायः सब जगह ही मिल सकता है। पकनेपर जब बालीमें फूल आ जायँ, तब इसे खोदकर जड़ें निकालकर रक्खी जा सकती हैं। उनका प्रयोग किसी भी समय किया जा सकता है। प्रायः एक बरसातके बाद इसका प्रभाव कम हो जाता है।

(ख) चारसे पाँच रत्तीतक शुद्ध असली कपूरको पानमें रखकर चबा लिया जाय। बिच्छूका भारी जहर भी इससे उतरता देखा गया है।

× × ×

२. बच्चोंकी उलटियाँ—एक रामबाण ओषधि

प्रायः ५-६ वर्षतकके बच्चों (विशेषकर जो लंबे अर्सेतक माँके दूधपर ही रहते हैं) को किसी भी समय अनवरतरूपसे उलटियाँ होती हैं। ज्यों ही बच्चा दूध पीता है या कुछ भी खाता-पीता है, उलट देता है। ऐसी स्थितिमें एक कुशल गृहिणीके लिये यह रामबाण ओषधि बहुत उपयोगी सिद्ध होती है। बाजारमें कमलगट्टा नामसे एक ओषधि कठोर गोली-सी मिलती है। उसे स्वच्छ पत्थर या चकलेपर घिस लीजिये और एक चम्मचमें उसे उतार लीजिये। बस, बच्चेको उलटी होनेके दस-पंद्रह मिनट बाद दे दीजिये। ईश्वरकी दयासे उलटियाँ एकदम रुक जायँगी। कम-से-कम तीन बार दिनमें दीजिये। परहेज कोई नहीं।

गरमीकी ऋतुमें ठंडे पानीके साथ और सर्दीमें कुनकुने जलके साथ दी जानी चाहिये।

× × ×

३. पेशाब खुलकर आनेके परीक्षित योग

(क) यह योग बहुत ही उत्तम सफल सिद्ध हुआ है। प्रायः ग्रीष्म ऋतु एवं वर्षा ऋतुमें यह सामान्यतया देखा जाता है कि पुरुषों एवं महिलाओंके पेशाब रुक-रुककर आता है अथवा कुछ समयके लिये आता ही नहीं। यह पीड़ा विवाहित पुरुषों और महिलाओंको अधिक होती

* शायद अपामार्ग या चिचिड़ाको ही औंगा या ऊँगा कहते हैं।

है। इसके लिये बहुत ही सस्ता और अत्यधिक आराम-दायक योग है।

स्थानीय पंसारीसे कल्मी शोरा ले आइये। यह नमक-जैसा क्षार होता है। इसे पानीमें पीसकर पेड़ू (मूत्राशयके ऊपरवाला भाग जहाँतक अधोवस्त्र पहना जाता है और नाभिसे नीचे) पर लेप करिये। ७५% तो लेप करनेसे ही पेशाब आना शुरू हो जायगा। यदि फिर भी नहीं होता है तो एक गिलास ठंडे पानीमें आठ आनेभर (आधातोला) कल्मी शोरा घोलकर पिला दीजिये। १०-१५ मिनटमें पेशाब ठीक स्थितिमें आना शुरू हो जायगा।

यह ध्यान रखिये शीत ऋतुमें एवं मंथर ज्वर, चेचक आदिके समय किसी भी दशामें इसे पिलाया न जाय। लेप कर देनेसे हानि नहीं होगी।

(ख) इसबगोल एक तोला आधा सेर जलमें डालकर उसे १५ मिनटतक उबालें, फिर छानकर ठंडा कर लें। तदनन्तर उसमें एक तोला मिश्री मिलाकर दिनमें तीन बार रोगीको पिला दें। इससे भी शीघ्र ही पेशाब साफ आना शुरू हो जायगा।

—बाबूलाल अग्रवाल
एम्० ए०, बी० एड०, साहित्यरत्न
हिंदी-साहित्य-सदन
(जिला जयपुर राज०)

२

एग्ज़िमा रोगको दूर करनेके लिये एक ओषधि

सुहागा, आँवलासार गंधक, फिटकरी और शक्कर आवश्यकतानुसार बराबर वजनमें लेकर अलग-अलग बारीक पीसकर रख लीजिये। प्रयोग करनेके समय नीबूके रसमें मिलाकर पीड़ित स्थानको साफ करके लगाइये। साथ ही मञ्जिष्ठादि काढ़ा भी सेवन कीजिये। शत-प्रतिशत रोगियोंको लाभ हुआ है। महात्माप्रदत्त अनुभूत योग है। इससे लाभ उठाइये।

—श्रीकृष्णदास नेमा
राजगढ़ (ब्यावरा)

३

मूत्रातिसारकी जड़ी

अधिक पेशाब आनेसे निर्बलता आ जाती है और मूल्य-वान् औषध भी शीघ्र लाभ नहीं कर पाती। हिंदीमें इसे खरेटी, बरियारी; मराठीमें—चिकणा थोरला; गुजरातीमें—खपाट, बला और अंग्रेजीमें कंट्रीमेलो इत्यादि कहते हैं। इसकी जड़की छालका चूर्ण छः माशा, चीनी एक तोला, ऽ= पाव दूधके साथ पी लें। यदि जड़ न मिले तो बीज पंसारियोंके यहाँ बीजबंद नामसे मिलेंगे। उनका चूर्ण, चीनी एक तोला, दूध आध पावके साथ प्रातः-सायं दोनों समय पीनेसे तीन दिनमें अवश्य लाभ होगा। प्रातः-स्नानादि, शीत-उपचारसे परहेज रहे।

—कामदेवप्रतापसिंह, सिद्धसदन, भिटारी, धनगढ़

मिरगीकी दवाके बारेमें स्पष्टीकरण

'कल्याण' के गत दिसम्बर मासके अङ्कमें पृष्ठ१३५५ काल्म २ के नीचे मिरगीकी दवाका प्रयोग छपा था। उसके सम्बन्धमें मेरे पास सैकड़ों पत्र आ चुके हैं और अभी आते जा रहे हैं। मैं उत्तर देते-देते हैरान हो गया हूँ। अतः उस प्रयोगके बारेमें कुछ स्पष्टीकरण करके आशा करता हूँ कि अब मेरे पास व्यर्थमें पत्र भेजकर समय तथा पैसा नष्ट न करें।

दूध गायका हो तो सर्वोत्तम है। मीठी बच पंसारीके यहाँ मिलती है तथा मीठी होती है। दूध-भातके अलावा और कुछ भी नहीं खाना है। फल खिलाया जा सकता है। दूसरे प्रान्तोंमें मीठी बचको क्या कहते हैं, यह मैं नहीं जानता। खूराक बड़ोंके लिये दो आनेभर सुबह तथा दो आनेभर शामको दी जाय। छोटे बच्चोंको उम्रके अनुसार एक आना या दो पैसा भर दिया जाय, शहदमें मिलाकर।

—अम्बिकेश्वरपति त्रिपाठी पत्रकार,
नयाघाट, अयोध्या (उ० प्र०)

देशकी वर्तमान स्थितिमें सुधारके लिये भगवदाराधन कीजिये

इस समय देशमें प्रायः सर्वत्र अशान्ति छायी हुई है। लोगोंके जीवनमें आस्तिकता, ईश्वरमें विश्वास तथा धर्मतत्परताका अभाव होता जा रहा है और बड़ी तेजीसे निश्चित नीचे गिरानेवाले तमोगुणकी वृद्धि हो रही है। इसीसे सभी क्षेत्रोंके शिक्षित-अशिक्षित सभी लोगोंमें काम, लोभ, क्रोध, द्वेष, द्रोह, असत्य, हिंसा, धनकी राक्षसी भूख, पदलोलुपता और चारित्रिक पतन आदि बढ़ रहे हैं। अनाचार, अत्याचार, भ्रष्टाचार, चोरी, ठगी, डकैती, लूटपाट, तोड़-फोड़, स्त्रियोंका अपहरण, हत्याएँ, आग लगाना तथा सम्पत्तिका ध्वंस करना आदि सर्वथा अवाञ्छनीय एवं राक्षसी आचरण जीवनकी सहज वृत्ति बने जा रहे हैं। इन कुकार्योंमें गौरव माननेकी प्रवृत्ति बढ़ रही है। उच्चपदस्थ राज्याधिकारी, जन-नेता तथा जनताके पथप्रदर्शक लोगोंमें भी ऐसे अनुचित कार्य करने-करानेकी रुचि तथा प्रवृत्ति हो गयी है और इसमें 'जनहित' बताकर जनसमूहको प्रोत्साहन दिया जा रहा है; अराजकता, अशान्ति, तोड़-फोड़, हिंसा, अव्यवस्था आदिका खुला समर्थन किया जा रहा है और जब अच्छे लोगोंकी यह स्थिति है, तब उन्हें आदर्श माननेवाला जनसमूह तथा अपरिपक्व-बुद्धि विद्यार्थीसमाज ऐसे ही काम करें, इसमें क्या आश्चर्य है ? गुंडे-बदमाश तथा चोर-डकैत तो ऐसे अवसरोंको भाग्यका उदय ही मानते हैं।

यह सब हमारे घोर पतन तथा भावी भारी संतापके सूचक स्पष्ट चिह्न हैं। यह स्थिति नहीं बदली और दुर्भाग्यवश यों ही परिस्थिति बिगड़ती गयी तो पता नहीं, क्या होगा। लोक-परलोक दोनों तो बिगड़ेंगे ही, दुःखोंकी भी बाढ़ आ जायगी। ऐसी अवस्थामें न्याय, शान्ति, जनताकी सुख-वृद्धि तथा (लोक-परलोकमें परिणामसुखद) असली साम्यवाद या समाजवाद चाहनेवाली कर्तव्यपरायण विभिन्न सरकारोंको तथा केन्द्रिय सरकारको इस पतनके प्रवाहको रोकनेके लिये बड़ी सावधानी तथा दृढ़ताके साथ कर्तव्यका पालन करना चाहिये। परिस्थिति काबूके बाहर हो जायगी, तब सिवा पश्चात्तापके कोई साधन नहीं रह जायगा। हिंसामें विश्वास रखनेवाले देशके विभिन्न राजनीतिक दलोंका तथा द्रोही अन्य देशोंका आतङ्क बढ़ रहा है। इसलिये आत्मरक्षार्थ स्थान-स्थानपर मजबूत संगठन भी अवश्य होने चाहिये।

साथ ही जिनका विश्वास हो, उनको सच्चे हृदयसे व्यक्तिगत और सामूहिकरूपसे भगवान्से प्रार्थना करनी चाहिये। स्थान-स्थानपर तथा घर-घरमें श्रीगणेशजी, दुर्गाजी, भगवान् विष्णु, भगवान् शंकर तथा श्रीहनुमान्जीकी और अपने-अपने धर्म तथा रुचिके अनुसार अपने इष्टदेव भगवान्की आराधना-उपासना अवश्य करनी चाहिये। सात्त्विक यज्ञ, गायत्री-पुरश्चरण, नारायण-कवच, गजेन्द्र-स्तुति (भागवत), रामरक्षा-स्तोत्र आदिके पाठ—भगवन्नाम-जप-कीर्तन करने-कराने चाहिये; जिससे आत्मरक्षाके साथ ही लोगोंमें सद्बुद्धिका उदय हो; लोगोंके मनोंमें शान्ति, प्रेम तथा सर्वथा अहिंसावृत्ति एवं सबको सुखी देखने-करनेकी प्रबल भावना उत्पन्न हो, यह निवेदन है।

गीताभवन-स्वर्गाश्रम-सत्सङ्गकी सूचना

गीताभवन स्वर्गाश्रममें इस वर्ष भी सत्सङ्गका आयोजन होनेवाला है। सम्भवतः चैत्र शुक्ल पक्षके अन्ततक श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज स्वर्गाश्रम पधारें। भाई श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दारकी भी इसी समय पहुँचनेकी बात है। पर इधर उनका स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता। भगवत्कृपासे यदि तबतक स्वास्थ्यकी शिथिलता और शरीरकी दुर्बलता अधिक नहीं रही तो उनके भी पहुँचनेकी सम्भावना है। परम श्रद्धेय स्वामीजी श्रीशरणानन्दजी महाराजसे भी पधारनेके लिये प्रार्थना की गयी है। अन्यान्य साधु-महात्माओंके भी पधारनेकी बात है।

ब्रह्मलीन परमपूज्य श्रीसेठजीने इस सत्सङ्गका आयोजन इसीलिये किया था कि अध्यात्म-पथके सच्चे पथिक भगवती भागीरथीके पावन तटपर संत-महात्माओंकी पवित्र संनिधिमें रहते हुए अपने जीवनको साधन-निष्ठ बना सकें तथा भगवान्के मार्गपर अग्रसर हो सकें। स्वर्गाश्रमस्थित गीताभवन ऐश-आराम, जलवायु-परिवर्तन या विनोद-विहारकी स्थली नहीं है। अतः इस सत्सङ्गमें भाग लेनेवाले भाई-बहनोंसे यह विनीत प्रार्थना है कि गीता-भवनमें रहते समय वे साधक-जीवन व्यतीत करें, व्यवहार तथा दिनचर्यामें संयम-नियमको महत्त्व दें, सत्सङ्गमें उपस्थित होकर लाभ उठायें तथा अपने भजनयुक्त साधकोचित आचारसे गीताभवनके वातावरणकी श्रेष्ठताको बनाये रक्खें।

स्वर्गाश्रममें नौकर-रसोइया नहीं मिलते, अतः लोगोंको आवश्यकतानुसार नौकर-रसोइया साथ लाने चाहिये। वहाँ यथाशक्ति व्यवस्था रखनेके बाद भी चोरी हो जाती है, अतः गहने आदि जोखिमकी चीजें साथ नहीं लानी चाहिये। स्त्रियोंको पीहर या ससुरालवालोंके अथवा अन्य किन्हीं सम्बन्धीके साथ ही वहाँ जाना चाहिये, अकेली नहीं। भरसक बालकोंको साथ नहीं लाना चाहिये। बालकोंके कारण बड़ी अव्यवस्था होती है तथा सत्सङ्गमें विघ्न होता है। सर्वथा लाचारी हो तो वे ही लोग बच्चोंको साथ ले जायँ, जो अपने डेरेपर उन्हें अलग रखनेकी व्यवस्था कर सकते हों।

भीड़के बढ़ जानेपर कभी-कभी स्थानकी इतनी तंगी हो जाती है कि एक कमरेमें दो-दो या तीन-तीन परिवार ठहराने पड़ते हैं। सभी भाइयोंसे प्रार्थना है कि ऐसी स्थितिमें सहयोग-सहिष्णुता-सेवा-सद्भावपूर्वक साथ-साथ रहते हुए सत्सङ्गका लाभ उठावें।

यद्यपि कठिनाई बहुत है, फिर भी सत्सङ्गी भाइयोंके खान-पानके शुद्ध सामानके प्रबन्धकी चेष्टा की जा रही है। परंतु दूधका प्रबन्ध होना बहुत ही कठिन है, यह बात ध्यानमें रखनी चाहिये।

'कल्याण' नामक हिंदी मासिकपत्रके सम्बन्धमें विवरण

फार्म चार—नियम-संख्या—आठ

१-प्रकाशनका स्थान—गीताप्रेस, गोरखपुर

२-प्रकाशनकी आवृत्ति—मासिक

३-मुद्रकका नाम—मोतीलाल जालान

राष्ट्रगत सम्बन्ध—भारतीय

पता—गीताप्रेस, गोरखपुर

४-प्रकाशकका नाम—मोतीलाल जालान

राष्ट्रगत सम्बन्ध—भारतीय

पता—गीताप्रेस, गोरखपुर

५-सम्पादकका नाम—(१) हनुमानप्रसाद पोद्दार

(२) श्रीचिम्मनलाल गोस्वामी, एम्० ए०, शास्त्री

दोनोंका राष्ट्रगत सम्बन्ध—भारतीय

दोनोंका पता—गीताप्रेस, गोरखपुर

६-उन व्यक्तियोंके नाम-पते जो इस समाचार-पत्रके मालिक हैं और जो इसकी पूँजीके भागीदार हैं। — श्रीगोविन्दभवनकार्यालय पता—नं० १५१ महात्मागाँधीरोड कलकत्ता (सन् १८६० के विधान २१के अनुसार रजिस्टर्ड धार्मिक संस्था)

मैं मोतीलाल जालान, इसके द्वारा यह घोषित करता हूँ कि ऊपर लिखी बातें मेरी जानकारी और विश्वासके अनुसार यथार्थ हैं।

दि० १ मार्च १९७०

मोतीलाल जालान

प्रकाशक